TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182553
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library
GH
33
S6Pr
Accession No. 2238
श्रीवास्तव हरिमोहन लाल
प्रायश्चित 1952
ok should be returned on or before the date last

प्रायश्चित्त

सामाजिक लघु उपन्यास

श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव
एम.ए., एल.टी, साहित्यरत्न

प्रकाशक

किताबघर

कदमकुआँ, पटना-३

प्रथम संस्करण—१९५२

मूल्य १॥)

मुद्रक

युनाइटेड प्रेस लि.

बाकरगंज, पटना-३

समर्पण

स्वर्गीय वंशीलाल जी वर्मा,

वकील, हाई कोर्ट, दतिया

बापूजी,

तुम्हारा यह स्नेह-भाजन तुम्हारे ही दुलार से उर्दू-फ़ारसी की पारिवारिक लीक छोड़कर नागरी के नयेपन की ओर आया।

फिर उस अबोध स्थिति में तुम्हारे मार्ग-दर्शन से वंचित होकर किसी प्रकार गिरते-पड़ते जीवन-यात्रा में अग्रसर हुआ है।

कथा-साहित्य में यह पिछला प्रयत्न परिमार्जित होकर तुम्हारी ही स्मृति में समर्पित है।

—हरि

प्रस्तावना

हिन्दी-साहित्य उन्नति के पथ की ओर अग्रसर है ; सभी ओर से साहित्य की वृद्धि हो रही है, किन्तु कुछ बातें अभी अछूती ही हैं ; उनकी ओर हिन्दी-लेखकों का ध्यान विशेष रूप से गया नहीं है। इन्हीं में एक है 'लघु उपन्यास'। बात बहुत पुरानी नहीं है, जब 'अभ्युदय' में श्री कृष्णकान्त मालवीय ने वाल्टेयर के सुप्रसिद्ध शार्ट नॉवेल 'जेडिग' का अनुवाद धारावाहिक रूप में प्रकाशित कर हिन्दी को भेंट किया था। उन्होंने लिखा था "हिन्दी में उपन्यास भी हैं, और कहानियाँ भी ; किन्तु आख्यायिकाओं के एक विशेष रूप का, जिसका अंग्रेजी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है, हिन्दीवालों का अभी परिचय नहीं है। यह विशेष प्रकार की आख्यायिका न तो छोटी कहानी ही कही जा सकती है, न बड़ा उपन्यास ही ; इसे हम दोनों का मध्यवर्ती स्थान दे सकते हैं।"

आज हम जीवन-संग्राम में इतने उलझे हुए हैं कि हमें मनोरंजन के लिए बहुत ही कम समय मिलता है। अब तो हम चाहते हैं थोड़े-से-थोड़े समय में जीवन का यथार्थ अनुभव, और यही सिनेमा-गृहों की दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई संख्या का भी मुख्य कारण है। खेद है कि हमारे लेखकों का ध्यान सर्व-साधारण के इस आकर्षण की ओर अभी गया नहीं है और गया भी है तो नगण्य है। जिस प्रकार अधिकतर छोटी कहानियाँ आकार में छोटी होते हुए भी लम्बी गाथाओं का रूप ग्रहण करती दिखाई देती हैं, उसी प्रकार पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित धारावाही उपन्यास आकार

में छोटे होते हुए भी वृहत् उपन्यासों से कम नहीं होते—आकार में छोटी होने से ही कोई कृति लघु नहीं कही जा सकती।

लघु उपन्यास का चित्रण साधारण उपन्यास जैसा विस्तृत नहीं। उसमें जीवन की व्याख्या होती है, पर सीमा-बन्धन में बँधी हुई। घटना न एक होती न अनेक। परिस्थितियाँ कई होती हैं, किन्तु प्रधान गिनीचुनी। वातावरण भी एकाधिक रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु उसके भिन्न रूप उपन्यास की भाँति एक सूत्र में बँधे हुए और एक परिणाम पर पहुँचनेवाले होते हैं।

श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर ने कहा है—"किसी भवन को तैयार करने के लिए सबसे पहले भूमि की आवश्यकता होती है ; उसके बाद ईंट, गारा और सीमेंट के द्वारा उस भवन का निर्माण होता है। उपन्यास-रचना में भी ठीक ये ही बातें होती हैं। भाषा जमीन की भाँति आश्रय देती है और जीवन के भिन्न-भिन्न दृश्य, रूप और उनकी घटनाएँ ईंट, गारे और सीमेंट का काम करती हैं।"

अब जैसा भी हो, उसके निर्माण के लिए न्यूनाधिक परिणाम में उपर्युक्त सभी वस्तुएँ चाहिये ही। लघु उपन्यास की रचना के लिए सभी चीजें कम परिमाण में चाहिये, किन्तु जहाँ थोड़ी भूमि, और ईंट, गारा और सीमेंट कम लगाने पर भी इसे उपयोगी बनाना है वहाँ कमाल इंजीनियर तो चाहिये ही।

प्रस्तुत पुस्तक में एक चतुर इंजीनियर का कौशल उसके समीक्षकों को भले ही थोड़ा दिखाई दे, परन्तु लेखक को अपनी कृति की नवीनता पर विश्वास है, और पारिवारिक जीवन के बीच पलनेवाले एक भयंकर

सामाजिक पाप का जो चित्र पाठकों के विचारार्थ इसे उपस्थित करना था, वह इसने किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य में रखे बिना सचाई के साथ प्रस्तुत कर दिया है। इस दृष्टि से देखने पर विश्वास है, वह थोड़ी-बहुत सफलता अवश्य प्राप्त कर सकेगा। लघु उपन्यास का कोई निश्चित स्वरूप पास में न होने के कारण लेखक को स्वतंत्रता भी विशेष रही है, और इस हेतु आंशिक सफलता भी लेखक के सन्तोष का ही विषय होगी।

अपने समीक्षकों से मैं यह नम्र निवेदन किये बिना नहीं रह सकता कि किसी वर्ग-विशेष की दुर्बलता के चित्रण के रूप में यह कदापि न लिया जाय। यदि वे अपने आस-पास दृष्टि दौड़ाने का थोड़ा कष्ट करेंगे, तो समस्त हिन्दू-जाति में पारिवारिक मर्यादा की दीवारों को ढहते देख उनका हृदय भी सन्तप्त हुए बिना न रहेगा। शुक्ल जी ने कहा है—सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर क्रोध या घृणा प्रकट करने के लिए समाज ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रखा है। जीवन के इस बदलते हुए युग में कुछ ठोकरें खाकर मैंने 'सत्यं वद' के आदर्श के साथ 'प्रियं वद' के "बाबा-वाक्य" को जोड़ रखने का अभ्यास अभी-अभी किया है। पाठक अपनी सहृदयता से मुझे सँभलने का अवसर देंगे।

दतिया
भ्रातृद्वितीया,
सं० २००६ वि०

हरिमोहन लाल श्रीवास्तव
एम०ए०, एल०टी०, साहित्यरत्न

प्रायश्चित्त

[१]

दर्शनपुर के प्रायः सभी चित्ताकर्षक दृश्य प्राचीन गौरव के ध्वंसावशेषों में ही हैं। किसी ऐसे ही स्थान पर कवि-हृदय के ये उद्‌गार प्रकट हुए होंगे—'खँडहर बता रहे हैं, इमारत बुलन्द थी'। नगर के चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ है। यद्यपि चहारदीवारी जीर्ण-शीर्ण दशा में हैं, तथापि भावुक दर्शकों के लिए विशेष आकर्षण रखती हैं। द्वार से कुछ दूर आगे एक विस्तृत तालाब है। दूसरी ओर एक टीला है, जिस-पर एक विशाल दुर्ग अवस्थित है। भवन की पूर्वी दीवार इसी चहारदीवारी पर खड़ी है। किसी समय यह राजभवन रहा होगा, किन्तु अब यहाँ न्याय-मन्दिर में सच और झूठ साक्षी की तुला पर तौले जाते हैं।

यहाँ से सम्पूर्ण नगरी की छटा दृष्टिगोचर होती है। राजधानी की ओर आनेवाले गांव के लोग दूर से ही दुर्ग के

गर्वोन्नत शीर्षभाग को सिर झुकाकर सुख और सन्तोष की सांस लेते हैं। पिछले पार्श्व के नीचे के भाग में सड़क से सटी कुछ कब्रें हैं। दूसरी ओर घाट पर ही एक देव-मन्दिर बना हुआ है। देखने से यह मन्दिर हाल का बना हुआ ही जान पड़ता है। मन्दिर के प्रांगण में कुछ घने छायादार वृक्ष लगे हुए हैं। थके हुए परदेशी यात्रियों का यह विश्रामस्थल है। एक ओर दूरतक फैला जल-प्रान्त, दूसरी ओर विशाल न्याय-मन्दिर, बीच में रेतीली कँकड़ीली सड़क, सभी मिलकर इस स्थान को रमणीयता प्रदान करते हैं। ताँगे में जानेवाले यात्रियों को सड़क के दचके खाते हुए इस रमणीयता का अनुभव हुए बिना नहीं रह सकता।

माघ मास का अँधेरा पख था। सन्ध्या का समय था। अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्यदेव अपनी अन्तिम रक्त-रंजित रश्मियों से न्याय-मन्दिर के सर्वोच्च शिखर को रक्तिम आभा प्रदान कर रहे थे। स्टेशन-रोड होने के कारण ही पथ पर प्रायः बराबर अधिक लोग आते-जाते रहते हैं, किन्तु इस समय यही राजपथ प्रायः जनशून्य था। माघ का महीना, कड़ाके की सर्दी, गाड़ी का समय भी निकल चुका था। अतः इसे भी विश्राम करने के लिए दो घड़ी का अवकाश मिला। कुछ निराश्रय प्रवासी सर्दी से बचने के लिए मन्दिर के प्रांगण में स्थित पेड़ों के नीचे से सूखी लकड़ियाँ बटोर रहे थे।

अन्तिम सूर्य-किरणें विलीन होने को थीं। क्रमशः दिवस

का अवसान हुआ, और चारों ओर अन्धकार का एकाधिपत्य हो गया।

इसी झुटपुटे के समय दूर घाट की ओर एक स्त्री जाती हुई दिखाई पड़ी। वह कभी अपने आगे को निहारती, कभी अपने आभूषण सँभालती और कभी अपने वस्त्रों को यत्नपूर्वक सहेज लेती। चल तो रही थी पट्टियों पर, किन्तु इधर-उधर से जाकर उसकी आँखें सड़क की ओर ही लग जाती थीं; उसके हाव-भाव से ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसके कान बार-बार किसी के आने की आहट ले रहे हों। यदि वह किसी की प्रतीक्षा कर रही थी, तो उसे बैठ जाना था घाट के ऊपर की पट्टियों पर, जहाँ से वह प्रत्येक आने-जानेवाले व्यक्ति को देख सकती। वह सकपकायी-सी मालूम हो रही थी।

इधर अलाव जल रहा था। दिनभर की दौड़-धूप के बाद थके हुए यात्री आग के सामने बैठकर गरम गप्पें लड़ा रहे थे। यदि वे बात-चीत में मग्न न होकर कहीं इस स्त्री को देख पाते, तो अवश्य ही उन्हें इसके सम्बन्ध में तीव्र जिज्ञासा मनमें उठी होती।

अब और भी अँधेरा छा गया। स्त्री एक बार इधर-उधर सतर्क दृष्टि डालकर उठी। इसी समय सड़क पर गर्द का ग़बार छोड़ती हुई एक लारी सरपट निकल गयी। स्त्री बैठ गयी। कोई दो मिनट बाद वह फिर उठी और पट्टियों पर चलकर तालाब के दूसरे किनारे की ओर बढ़ी। तेज

हवा का एक झोंका आया और दूर किसी कार का हार्न बजा, किन्तु इस बार वह रुकी नहीं।

एक तो श्मशान-भूमि, दूसरे निबिड़ अन्धकार। उस सन्नाटे को रह-रहकर भंग करनेवाली पत्तों की खड़खड़ाहट तथा तालाब के कगार पर टकरानेवाली लहरों का शब्द मिलकर प्रतिक्षण इस स्थान की भयानकता को बढ़ा रहे थे। फिर भी स्त्री चली जा रही थी। कुछ दूर चलकर वह रुक गयी।

---

[२]

रोहिणी जिस समय निरा अबोध बालिका थी, उसके पिता रायबहादुर श्यामाचरन परलोकगामी हुए। उसके पालन-पोषण और उसकी शिक्षा-दीक्षा का भार उसकी माता पर पड़ा। बेचारी बालिका ही उसके प्राण थी। उसने पुत्री को उचित शिक्षा देने में कुछ भी उठा न रखा। रोहिणी पढ़-लिखकर सयानी हुई। अब बाल्यावस्था के स्थानपर उन्मत्त यौवन आया। उधर रोहिणी ने नवीन आशाओं और सुन्दर उमंगों को लेकर यौवन-प्रांगण में प्रवेश किया और इधर माता के सिर पर विवाह की चिन्ता सवार हुई।

विवाह तय हुआ और उसकी तिथि भी आयी। सब कार्य यथाशक्ति सम्पादित हुए, पर आज वह खुशी, वह शोभा कहाँ, जो रायबहादुर के जीवित रहने पर होती? खुशियाँ मनाने का अवसर ही था, सभी के मुख पर प्रसन्नता नृत्य कर रही थी, परन्तु माता की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग रही थी। उसने काम सभी किये, पर नयनों में आँसू छलछलाते रहे। शुभ घड़ी में यह अपशकुन सारे सुख को ले बैठा।

रोहिणी पति के घर पहुँच गयी। पतिदेव सब प्रकार रोहिणी को सुखी रखते। रोहिणी पत्नी भी ऐसी थी, जिसके

ऊपर पति को गर्व हो सकता था। किन्तु दुर्दैव ! विवाह हुए अभी दो ही वर्ष हुए थे कि पतिदेव ने इस असार संसार से कूच कर दिया। रोहिणी के हृदय-मन्दिर का दीपक बुझ गया—सदा के लिए। आशाओं पर तुषार-पात हुआ ; उमंगें शोक-सागर में विलीन हुईं। वातहत लतिका की आशा जिस प्रकार उससे चिपकी हुई एक सूखी-सी पीली पत्ती पर केन्द्रित होती है, उसी प्रकार साल भर का एक नन्हा शिशु ही अब रोहिणी का सर्वस्व था।

जिस समय रोहिणी की माता को यह दुःखद समाचार मिला, उसका हृदय विदीर्ण हो गया। रोहिणी अपने मैके आ गयी। बेचारी माता पुत्री का मुख देखकर अपना दुख भूल गयी थी, पर अब बेटी का मुख देख-देखकर उसकी छाती फटती थी। माँ-बेटी किसी प्रकार अपने दिन बिताने लगीं। निष्ठुर दैव से इतना भी न सहा गया। विधवा रोहिणी मैके में पांच वर्ष भी पूरा-पूरा बिता न पायी कि उसकी माता भी काल-कवलित हुई। रायबहादुर का सुख-शान्ति-भवन अब दुःख-क्रान्ति-रुदन का रंगस्थल बन गया। पिता की अतुल सम्पत्ति की एकमात्र अधिकारिणी रोहिणी ही थी। अब सारी गृहस्थी की देख-भाल उसे स्वयं करनी पड़ती थी। उसके पास पर्याप्त धन था—इतना धन कि सुख से जीवन के दिन व्यतीत कर सके। किन्तु भावी प्रबल है !

रोहिणी ने रूप भी कुछ ऐसा पाया था जो अब वरदान

कम, अभिशाप अधिक था। उसकी आँखों में अपूर्व मनो-मोहकता थी, अंगों में अल्हड़पन कुछ इसी तरह का था। न जाने मनुष्य क्यों रूप और धन का सदैव लोलुप रहता है, और अपनी इच्छा की पूर्ति में कितने दुष्कर्म किया करता है। रूप और धन पुरुष के भले मित्र हों, किन्तु स्त्री के तो वे बैरी ही होते हैं। ये दोनों ही उसके लिए कट्टर शत्रु सिद्ध हुए। रोहिणी समाज के नारकीय कीटों से न बच सकी।

सुरेश इकहरे बदन का एक मनचला युवक था—फैशन का गुलाम, और युवावस्था की नूतन उमंगों के नशे में चूर। दूर के नाते में वह रोहिणी का देवर लगता था। सुतरां रोहिणी से हास-परिहास करने का भी वह अपनेको अधिकारी समझता था। रोहिणी का हृदय भी प्रेम करना चाहता था। उसका हृदय भी तो मानव-हृदय ही था। वह समझ नहीं पाती थी कि क्यों उसका हृदय दिनों-दिन सुरेश की ओर आकृष्ट हो रहा है—कदाचित् उसे सुरेश के चरित्र के सम्बन्ध में जानकारी न थी।

---

[३]

एक तो उनका बुढ़ापा, कोई सेवा-शुश्रूषा करनेवाला नहीं, दूसरे, बड़ा परिवार—कमानेवाले आप अकेले और खानेवाले सभी, उसपर लगातार दुःख पड़ते गये। इस दुस्सह भार के कारण पण्डितजी अपने जीवन से ऊब गये थे। उनके बाद किस प्रकार परिवार का काम चल सकेगा, उन्हें सदा यही चिन्ता सताती रहती। दो भाई थे; छोटे के मरे दो साल बीत चुके थे—स्मृतिस्वरूप अपनी विधवा पत्नी और एक पुत्र छोड़ गये थे। मँझले भाई से खटपट रहती थी और अब वे अनूपपुर में अपने पुत्र मनहरन के साथ रहते थे। पण्डितजी की पत्नी की मृत्यु पांच वर्ष पूर्व हो चुकी थी। एक जवान लड़का था, घर में बहू थी। लड़का मूछों पर हाथ फेरने लगा था। उचित था कि वह कुछ काम देखे, किन्तु उसे मानों उन बातों से कोई प्रयोजन ही न था! पण्डितजी मन ही मन कुढ़ा करते और अपनी असावधानी पर आँसू बहाया करते। लड़के को लाड़-प्यार में बिगाड़ चुके थे; अब करते भी क्या? मन को समझाने का वे हज़ार प्रयत्न करते, किन्तु कुल के अतीत गौरव का स्मरण हो आता और उस गौरव की तुलना अपने पुत्र के करतबों से करने लगते

तो सुख से साँस नहीं ले सकते थे—कलेजे से हर समय एक शून्य आह निकला करती थी।

सच बात यह थी कि छोटे भाई की मृत्यु से पण्डितजी का हाथ टूट गया था। भ्रातृ-प्रेम अमूल्य है; पत्नी-प्रेम और पुत्र-प्रेम यदि दोनों इकट्ठे कर दिये जायँ, तो भी 'हृदय' की तराजू पर बराबर नहीं उतर सकते। पत्नी-प्रेम फिर भी मिल सकता है; पुरुषार्थ है, तो पुत्र भी कई हो जायँगे, परन्तु भाई—सहोदर भाई! भाईवाला भाई को ठुकरा सकता है, और बिन-भाईवाला सदा भाई के लिए लालायित रहता है। भ्रातृ-प्रेम क्या है, पूछना चाहिये किसी बिना-भाईवाले से; वही अच्छी तरह समझा सकेगा, क्योंकि उसने उस प्रेम के अभाव का एक बार नहीं, जीवन में पद-पद पर अनुभव किया है।

हाँ तो, पंडितजी का दिल टूट गया था। उस निराशा-रूपी निबिड़ अन्धकार में आशा की केवल एक ही किरण थी, और वह आ रही थी एक पर्दे की ओट में से। उनका भतीजा रामशंकर होनहार था। रामू का उज्ज्वल भविष्य पण्डितजी के लिए कुछ कम सन्तोष की बात न थी।

किन्तु सुख में दुःख है और दुःख में सुख, संयोग में वियोग है, और वियोग में संयोग, आशा में निराशा है और निराशा में आशा, हर्ष में उद्वेग छिपा है और उद्वेग के पीछे हर्ष झाँकता है। अपनी समस्त आशाओं के अवलम्ब रामू को देखकर कभी-कभी पंडित जी व्यथित भी जान पड़ते।

बालक रामू उस दिन पंडित जी के पैर दबा रहा था ; उसी समय उनकी आँखों से अनायास नीरव अश्रु धारा बह चली। बालक कुछ घबड़ाया। दद्द के रोने का कारण वह समझ न पाया। अत्यन्त सरलतापूर्वक बोला—"दद्द, रोओ ना!" पंडितजी कुछ बोल न सके, आँखों के आँसू पोंछ डाले, किन्तु हृदय को गहरी ठेस पहुँच चुकी थी। ताऊ के आँसू पोंछते हुए बालक ने कहा—"दद्द, रोओ ना! तुम क्यों रो रहे हो?"—बालक की आँखों में भी आँसू छलछला आये।

अवरुद्ध कण्ठ से पण्डितजी ने प्रश्न का उत्तर दिया—"कुछ.....नहीं।" फिर कुछ सँभलकर बोले—"मैं रोता कहा हूँ? आँख में कुछ गिर गया था।"

रामू ने पूछा—"तो पानी ला दूँ? निकाल लो।"

उत्तर मिला—"नहीं, निकल गया। अब बस करो, बेटा! तुम खेलो।"

रामू चल दिया। पंडितजी की आँखों से एक बार फिर आँसुओं की झड़ी लग गयी। बालक ने देखा नहीं।

"बालक कितना भोला है। कितना होनहार! हा, दस वर्ष में ही बाप को खो बैठा! बेचारे ने पिता का क्या सुख देखा? मैं जीऊँगा ही कितने दिन? फिर कैसे क्या होगा? कृपाशंकर इसे फूटी आँखों नहीं देख सकता।"—ये ही विचार इस समय वृद्ध ताऊ के मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे।

[४]

प्रत्येक बात में गुण-दोषों का होना स्वाभाविक है। प्रकृति का यही नियम है कि उसने बुराई में भी राम का अस्तित्व दिखाया है। जहाँ धन इस लोक में ख्याति और परलोक में शान्ति दिलाने की शक्ति रखता है, वहाँ मनुष्य को सम्पूर्ण दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त करने का भी एक साधन है। सांसारिक बन्धनों में जकड़े हुए पुरुष धन की उपासना को ही कर्तव्य की चरम सीमा समझते हैं, धन ही उनके लिए सारे सुखों की जड़ है, और है पाप-कर्मों का घर। उसका उचित उपभोग तो कोई विरला ही कर सकता है।

रामू के चचेरे भाई मनहरन ने एक नया, अत्यन्त सुन्दर एवं सुखद जीवन प्रारम्भ किया था। सौन्दर्य, यौवन, हाव-भाव और प्रेम के सम्मिश्रण ने रमा को उनके जीवन की सर्व-श्रेष्ठ निधि बना दिया था। वे अपना अधिकांश समय उसीके साथ आमोद-प्रमोद और प्रेमाभिनय में बिताया करते। उधर कचहरी का समय होता और इधर पंडित मनहरननाथ रमा के पास होते। जब कचहरी जाते थे, कोई असामी फाँस ही लाते थे, किन्तु अब कचहरी जाते थे, तो बस तभी जब किसी भूले-भटके ग्राहक की पेशी होती। पिता की मृत्यु हो जाने से कोई अंकुश भी न रहा।

रमा अंग्रेजी के दो अक्षर क्या जानने लगी थी, स्त्रियों के बीच अपनेको सबसे ऊँचे आसन पर बैठी समझने लगी थी। रूप-रंग क्या अच्छा पा लिया था, अपनेको कोई अप्सरा ही समझती थी। उसे उपन्यास पढ़ने की चाट लग चुकी थी। उपन्यास पढ़ने का चाव यहाँतक बढ़ चुका था कि जबतक वह हाथ में लिया हुआ आख्यान समाप्त न कर देती, घर के सभी धन्धे पड़े रहते।

स्त्री-शिक्षा आवश्यक है, किन्तु उचित शिक्षा, और उसमें कमी न की जानी चाहिये। जबतक शिक्षा द्वारा विवेक से काम लेने और उचित-अनुचित का विचार कर चलने की क्षमता न आ जाय तबतक अध्ययन समाप्त न हो। अधूरी शिक्षा का परिणाम अभीष्ट ध्येय के विपरीत ही होता देखा गया है। विकास के स्थान पर उससे विनाश की ही आशंका है।

रमा ने अंग्रेजी की सातवीं कक्षातक शिक्षा पायी थी, और सीखा था मिशन में केवल इतना—'नॉवल' किसे कहते हैं और 'रोमांस' क्या है। अंग्रेजी नॉवल तो वह समझ न सकती थी। हाँ, किसी सूत्र से बहुत-कुछ प्रेम-सामग्री कण्ठस्थ कर लेती थी। उपन्यासों से सरल मनोरंजन करने के स्थान पर वह किसी उपन्यास की नायिका होने की कामना रखती थी। उसकी कल्पना-शक्ति ने काव्य और उपन्यासों की सहायता से अपने नायक की मूर्ति चित्रित की थी, जिसमें अनन्त सौन्दर्य और असीम अनुराग भरा था।

भाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश पतिदेव भी ऐसे ही मिले थे, अथवा रमा ने अपने जादू से उन्हें वैसा ही बना लिया था। वह अपने नयन-बाणों से उन्हें रिझाया करती थी और वे उसपर मन हार बैठे थे। कदाचित् किसी उपन्यास में रमा ने पढ़ा था—'प्रेम के मोर्चे पर शराब जबान खोल देती है'। बस प्याला भी चलने लगा था। किन्तु रमा इस विलासिता में बहुत दिन बिता न सकी, दस-ग्यारह साल में वह चल बसी।

रमा की मृत्यु हो जाने से वकील साहब बहुत उदास रहा करते; घर से बाहर नहीं निकलते। रमा-सी प्रेम की मूर्ति पाकर उन्हें उसके छिन जाने का बड़ा दुःख था। घर काट खाता था, परन्तु इस दुःख में ही उन्हें सुख मिलता था, क्योंकि घर में दो आँसू ढालकर अपना शोक-भर वे हलका कर सकते थे।

---

[५]

कभी किसी युग में सुना जाता था—"यथा नाम तथा गुणः", परन्तु अब तो "नाम बड़े और दर्शन थोड़े" ही बहुधा देखा और सुना गया है। नाम उल्टा रखने की प्रथा न जाने कब से चल पड़ी! इसका कितना प्राचीन इतिहास है, सबसे पहले इस प्रथा को किसने जन्म दिया, किसने किसके पुत्र का पहले-पहल गुण के विपरीत नाम रखा—यह कुछ भी ज्ञात नहीं। कोई इस संसार-व्यापी रोग का पता लगाये, तो अवश्य ही संसार के इतिहास में अपना नाम अमर कर जाय। 'आँख का अन्धा नाम नैनसुख' 'कहे काठ मार जाय, नाम गंगाधर' 'नाम रतनलाल और गुण पत्थर भी नहीं', 'नाम करोड़ीमल और पास में फूटी कौड़ी नहीं।' पुरुषोंतक ही यह सीमित नहीं; स्त्रियोंतक के नाम इससे नहीं बच सके हैं। 'नाम सुनयना और आँखों की रोगिन', 'नाम सुखिया और घर में ग़रीबी पाँव पसारे पड़ी', 'नाम सरला और बात-बात में बाँकापन'—कहाँतक गिनाया जाय? ऐसा जान पड़ता है, इस विश्वव्यापी रोग की व्युत्पत्ति तभी से हुई, जब से टुटपुँजिये लेखकों की तरह माता-पिता ने भी जन्म के पहले ही नामकरण-संस्कार करने की ठान ली।

हाँ, तो उसका नाम तो था सुन्दरी, पर थी काली कलूटी। न रूप, न रंग ; हां, जन्म लिया था तहसीलदार के घर। लड़की रूपवती न थी, कदाचित् इसीलिए उन्होंने भी उसे कृपाशंकर के मत्थे मढ़ दिया था। सच बात तो यह थी, कि इस ब्याही से वह बिन-ब्याही भली थी। कृपाशंकर न कुछ पढ़ा-लिखा था और न कुछ गुण ही सीखा था—रूप-रंग को लेकर क्या वह चाटती ? वह पति के चाल-चलन और व्यवहार को देख-देखकर दुःख के आँसू बहाया करती। रोया करती थी भाग्य को और कोसा करती थी आपको। कभी-कभी अवसर पाकर वह पति को उपदेश भी देती, परन्तु कृपाशंकर उसकी बातें हँसी-दिल्लगी में उड़ा देता ; कभी उसे झिड़क भी देता और फबतियाँ भी कसता। बेचारी सुन्दरी मन मसोसकर रह जाती ; कर ही क्या सकती थी ? एकान्त में घंटों बैठकर अश्रुपात किया करती और पति को अच्छे रास्ते पर लाने के लिए देवी-देवताओं को गुहराती, मन्नतें मानती।

बात यह थी कि रामू को देख-देखकर उसे पति की प्रत्येक बात में न्यूनता का आभास मिलता। उसके हृदय में रामू के प्रति ईर्ष्या के भाव उठते और मिट जाते। जहाँ स्वार्थ का राज्य हो, वहाँ ईर्ष्या पनप नहीं सकती। वह सोचती, ये तो कुछ पढ़े-लिखे नहीं, लाला पढ़-लिख जायँगे, कोई अच्छी-सी जगह मिल जायगी, कहाँ तक न झुकेंगे।

किन्तु, आशा में निराशा है और निराशा में आशा छिपी

हुई है। अहा, सृष्टि का यह कितना सुन्दर, कैसा चिरंतन नियम है ! रामू के प्रति पति का रूखा व्यवहार कभी-कभी उसे असहनीय हो जाता ; जीवन घोर नैराश्यमय प्रतीत होता। वह सोचती, यदि ये लाला के साथ अच्छा व्यवहार नहीं कर सकते, तो....लाला भी फिर कैसे मदद करेंगे।

उस दिन रामू अपना परीक्षाफल सुन कर आया ; सबके पैर छुए। जब वह कृपाशंकर के पैर छूकर चला गया, तब सुन्दरी बोली—"लाला तो पैर छूने आये और तुमने सूखे-से टरका दिया 'खुश रहो' ।"

'और क्या करता ?"

"वही बात रस के साथ कही जाती है, और उसी बात का लट्ठ मारा जा सकता है। पढ़-लिखकर निकल जायंगे, तुम्हीं को सहारा मिलेगा।"

"सहारा मिलेगा ! मुझे किस साले के सहारे की जरूरत है।"

"सहारे की जरूरत नहीं ! ऐसा करते ही क्या हो ? जबतक दद्दू हैं, तभीतक..... ।"

"दद्दू न रहेंगे, तो माल तो कहीं न जायगा ?"

"ऐसा क्या माल है ? कितना माल क्यों न हो, कबतक ऐसे चल सकेगा ? अपनी कमाई अपनी कमाई है।"

"ऐसे क्या ! कोई दुकान कर लूँगा।"

"अभी जो तुम दुकान करना चाहो तो क्या दद रुपये न देंगे ?"

"तुझे क्या पड़ी है, अभी क्यों करूँ ?"

'बात में रस ही नहीं। हित की बात कहने से काटने को दौड़ते हैं। मुझे नहीं पड़ी, ता पड़ी किसे ?"

"चल हट ! चुप रह ! जवान निकाल लूँगा।"

"देखूँ तो, कैसे जबान निकालते हो ?"

"बक-बक किये ही जायगी"—कहते हुए चिमटा उठाकर दे मारा। सिर में चोट लगी, सुन्दरी रोने लगी। कृपाशंकर चलने लगा।

सुन्दरी रोते-रोते बोली—"भाग्य ही फूटा है।"

कृपाशंकर चलते-चलते बोला—"भाग्य फूटा है तो रोओ बैठकर।"

"रो तो रही हूं"—सुन्दरी का उत्तर था।

---

[६]

एक विधवा के लिए जिसने पूर्ण रूप से पति-प्रेम को समझा ही नहीं, प्रेम करना मना है, परन्तु बीसियों चाट चुकने पर भी एक साठ वर्ष के खुर्राट के लिए सात-सात स्त्रियों से प्रेम करने के लिए खुली छूट है। स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह वर्जित है किन्तु वृद्ध-विवाह की सरे आम स्वीकृति है। बलिहारी है, समाज तेरी ! तू धर्म को पहचानता है, पापात्माओं को दण्ड देता है, और निरपराध को गले लगाता है !

पावस की सन्ध्या थी ! बादल अभी-अभी बरस-कर निकल चुके थे। गगन धूमिल था, सुरभित समीर बह-बह-कर प्रेमी जनों के हृदय में आनन्द की लहरें उठा रहा था। विरहिणी कमरे में सुरीली तान से कुछ अलाप रही थी, पर वह उसका गान था अथवा हृदय की कसक-भरी वेदना ?

"प्यार-प्यार संसार पुकारे,
मैं क्या जानूँ, है क्या प्यार ?
विस्मृति के उस पार निहित,
हो गया सदा को मेरा प्यार।
शैशव के उन्माद क्षितिज में,
यौवन की काली रेखा।

छिपी हुई थी, झूम रहा था,
राग-भरा मेरा मृदु प्यार।"

इसी समय कमरे में सुरेश ने प्रवेश किया। रोहिणी की हृदय-तंत्री किसी अनियंत्रित भाव से निनादित हो उठी। रोहिणी ने पास पड़ी हुई कुर्सी की ओर संकेत किया—"आइये, बैठिये।"

सुरेश बोला—"मैं अपने एक मित्र के यहाँ जा रहा था; सम्भव है देर से लौटूँ।"

"अभी? इस वक्त? क्या कीजियेगा?"

'कुछ नहीं, यों ही गप-शप के लिए मैं वादा कर आया था।"

"ऐसे वादों की ओर लोग ध्यान नहीं देते।"

"यहीं क्या करूँगा?"

"यहीं क्या करेंगे! आखिर आपको गपशप के लिए ही जाना है, मैं भी बड़ी वाचाल हूँ। हाँ, यदि वादा किसी दूसरे प्रकार का है.....।"

सुरेश कुर्सी पर बैठ गया और मुस्करा-कर बोला—"रोहिणी, तुम तो कभी वाक-कुशल होने का दम नहीं भरती थी?"

सुरेश सदा रोहिणी को 'भाभी' कहता था। आज प्रथम बार सुरेश के मुँह से 'रोहिणी' नाम से सम्बोधित किये जाने पर उसे अपना अतीत स्मरण हो आया। कभी इस

प्रकार किसी और ने भी उसे पुकारा था। रोहिणी को अपने नाम से प्रेम उत्पन्न हो रहा था।

वह बोली—"क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ; क्या कोई दम भरने से ही...।"

सुरेश ने कहा—"मैं मानता हूँ, यह मेरी भूल थी।"

इसी समय आकाश में काले बादल घिर आये; रह-रहकर बिजली कौंध जाती थी, बादल गरज रहे थे, कोयल कुहुक रही थी और पपीहा 'पीउ कहाँ' रट लगा रहा था। सुरेश को रोहिणी की स्वर-लहरी में अपूर्व मृदुलता का आभास मिला। अपने जीवन में प्रथम बार आज उसे इसका अनुभव हुआ। न जाने वह कौन जादू था, जिसने सुरेश को मतवाला बना दिया। भीनी-भीनी ठंडी-ठंडी हवा के झोंकों में वह अपने को भूल गया, और भूल गया समूची जगती को। प्रेमावेग में उसने अपनी भुजाओं में रोहिणी को कस लिया।

रोहिणी भी प्रेम चाहती थी। वह उन्मत्त जवानी की मीठी मौजों में प्रेम के सुखमय स्वप्न देखा करती थी। आज वे सब स्वप्न प्रत्यक्ष होते देख पड़े। वह प्यार में पागल हो गयी, और उसने सुरेश को आत्म-समर्पण कर दिया। दोनों ही प्रेम में विभोर थे—परन्तु हृदय-हृदय में अन्तर था। एक प्रेम सच्चा स्वर्गिक प्रेम था—वह प्रेम जो संसार को सुशोभित करता है, और जीवन को सार्थक बनाता है; और दूसरा प्रेम

समुद्र की क्षणिक लहर-सा था। प्रेमी-प्रेमिका निबिड़ अन्धकार की ओर बढ़ चले।

कुछ ही दिन बाद प्रेम का नशा जाता रहा; केवल खुमारी रह गयी। वह भी कितने दिनों के लिए? सुरेश ने पायी रायबहादुर की गाढ़ी कमाई और मित्रों की मण्डली। उधर एक पंचदश वर्षीया वीरांगना से सुरेश की आँखें लड़ गयीं, और इधर आँखों के काँटों को दूर करने की योजना हुई।

---

[७]

मनहरन अब भी तो जवान थे। किसी के प्रेमोत्पादक शब्दों के अधिकारी होने के लिए वे बड़े लालायित रहते। अवश्य ही इस अभाव की पूर्ति के लिए वे इस अधेड़ अवस्था में भी सिर पर मौर रखकर भोली बाला को ब्याह लाये। जगहें जो खाली होती हैं वे भर जाती हैं, प्रकृति का यह सामान्य नियम है। खाली जगहों का भर जाना ही उचित है, किन्तु यह नियम प्रायः सर्वत्र लागू होता नहीं देखा गया। अस्तु, प्रत्येक अच्छी बात में कुछ न कुछ कमी भी होती ही है।

गायत्री ग़रीब गृहस्थ की लड़की थी; यह दूसरी बात थी कि उसके पिता की ही एक सन्तान ने कुछ निर्धनता से तंग आकर, कुछ अपनी शौकीनी से प्रेरित होकर और कुछ अल्हड़ साहस का परिचय देते हुए प्रवास में दूर कहीं जाकर कालेज-जीवन की रंगीनी अपनायी थी। गायत्री कुछ टूटी-फूटी हिन्दी जानती थी, प्रेम को समझा न था क्या बला है। हाँ, घर के काम-काज में कुशल थी। वह कोई रूपवती न थी। रंग यद्यपि साँवला था, तथापि छवि थी। मनहरन तो प्रेम करना चाहते थे। वे कहते—क्या गौरांग स्त्रियों के साझे में ही प्रेम पड़ा है?

एक बार मनुष्य की प्रवृत्ति जहाँ भड़क उठी, बस फिर उसका शान्त होना यदि असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है। रमा से वकील साहब ने सीखा था प्रेम का अभिनय। इसके विपरीत गायत्री प्रेम के संसार से दूर रहकर पली थी—कदाचित् सिनेमा का वह गीत उसके कर्ण-रंध्रोंतक नहीं पहुँच सका था—

"प्रेम-नगर में बसाऊँगी घर मैं,
तज के सब संसार।
प्रेम का आँगन, प्रेम की छत हो,
प्रेम के होवें द्वार।"

प्रेम का वह इतना ही अर्थ जानती थी और जान सकती थी कि वकील साहब उसके पति हैं, स्वामी हैं, प्रियतम हैं, उसके एक-मात्र अवलम्ब हैं। किन्तु प्रेमी भी हैं यह वह अभी न समझ पायी थी, और कदाचित् कभी समझ भी न सकती थी। कारण, उसकी स्वाभाविक लज्जा ने हाव-भाव और चटक-मटक की उत्पत्ति न होने दी थी।

मनहरन को तो वही पुरानी लत थी जो रमा ने उनके चरित्र में भली भांति ला दी थी। नयन-बाण चलाते और गायत्री से उत्तर की आशा रखते, किन्तु भोली लड़की क्या उत्तर देती? वह प्रायः लजाकर मुँह फेर लेती, सिर झुका लेती, आँखें नीची कर लेती और कभी तो उसे कुछ ग्लानि-सी भी होती, क्योंकि उसने साधारण घरों में ऐसा अभिनय कभी

देखा-सुना न था। वह झिझकती झेंपती और शरमाती। हाँ, कभी-कभी मनहरन द्वारा बहुत तंग किये जाने पर एक लजीली मुसकान और तिरछी चितवन से प्रेम का उत्तर उसे देना ही होता। जब कभी गायत्री से वे मन का उत्तर पाते, उनका हृदय खिल उठता, किन्तु जब वह आँखें नीची कर लेती, उनका हृदय रोने लगता।

वे सोचते, रूपवती भी नहीं है, और यह झेंप की बुरी बीमारी! गायत्री, मुझ से प्रेम नहीं कर सकती—किस लिए? मैं बूढ़ा हूँ, किन्तु नहीं; क्या मैं जवान नहीं जँचता? रमा मुझसे प्रेम कर सकती थी, तो क्या गायत्री नहीं कर सकती? क्या मैं इन्हीं तीन वर्षों में इतना बूढ़ा हो गया?

जब-जब मनहरन के मनमें यह विचार उठता—"मुझे रमा बूढ़ा समझती है, इसी से प्रेम नहीं कर सकती" तब-तब वे खिन्न हो उठते; सचमुच गायत्री तब डर जाती। कभी सोचते—"मैं शराब पीता हूँ, इसीलिए तो मुझे पसन्द नहीं करती?" और तब यह निश्चय करते—"यदि शराब छोड़ने से गायत्री का प्रेम मिल सकता है तो वैसा सहर्ष कर सकता हूँ।"

इस प्रकार शराब छोड़ने का निश्चय तो वे कई बार कर चुके थे, किन्तु कभी निश्चय को कार्य-रूप में परिणत न कर सके थे। एक दिन दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब इसकी ओर आँख उठाकर भी न देखूँगा, और उस दिन से छुई भी नहीं, किन्तु तब भी गायत्री की प्रकृति में कुछ अन्तर न दिखाई पड़ा।

अब मनहरन इस प्रकार अपने हृदय को सांत्वना देते—"अभी इसे पूर्ण रूप से इस घर से, अपने पति से परिचित तो होने दो ; अभी तो बच्ची है। प्रेम धीरे-धीरे ही आता है। रहेगी, बसेगी, तभी मैं इसके हृदय के समीप हूँगा और तब मुझे अपना समझकर गायत्री कृतकृत्य होगी।" कभी-कभी इसी सांत्वना के, इसी आशा के पीछे से निराशा झाँकती नज़र आती, और तब उन्हें रमा याद हो आती। किन्तु फिर यह स्मृति उनमें नवजीवन का संचार करती, एक नयी स्फूर्ति ला देती।

वे अपना अधिकाधिक समय गायत्री को देना चाहते थे, उधर आय की चिन्ता अलग सवार थी। बेचारे मजबूर थे, करें तो क्या? परन्तु उन्होंने बहुत शीघ्र समझ लिया कि उनका काम छोड़कर घर में रहना गायत्री को अंगीकार नहीं। एक दो दिन, कारणवश अथवा अकारण, उन्होंने घर में रहकर देखा था, और गायत्री ने कचहरी टालने का कारण भी पूछा था। उसके इन प्रश्नों में चमकती थी अधिकारपूर्ण दृढ़ता। मनहरन उसका विरोध न कर सकते थे, प्रत्युत उनकी आशा को आधार मिला था।

[८]

आज अपने ही घर से रोहिणी निकाली जा रही है; उसके सिर पर एक फटी-सी धोती है। बेचारी ने कभी स्वप्न में भी यह न सोचा था कि कभी ऐसा भी दिन आयगा। रोहिणी की आँखें सारे संसार से भीख माँग रही हैं, किन्तु इस समय कोई उसका सहायक नहीं। जिस घर में रहकर उसका शरीर इतना बड़ा हुआ, जिस घर में पिता का स्नेह और माता का ममता-भरा दुलार मिला, जिस घर में रहकर समस्त सुख-दुःख उठाये—जिस घर की कभी वह एकमात्र कोकिला थी, वह उसका चिरकाल का सगा मकान भी आज उससे बिछुड़ रहा है! आज वह भी धोका दे रहा है, वह भी पराया हो रहा है।

रोहिणी की आँखों में आँसू, कलेजे में शुन्य आह! वे आँखें सहानुभूति की भूखी हैं, पर कोई सहानुभूति के दो शब्द प्रकट करनेवाला नहीं, उल्टे उसपर व्यंग्यवाणों की वर्षा और घाव पर नमकपाशी का काम हो रहा है। मुहल्ले के मनचले युवक वहाँ इकट्ठे हैं, और रोहिणी के सरल हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं। पड़ोसिनें छज्जों पर बैठी आलोचना कर रही हैं। आज उनकी छाती ठण्डी हुई है। कितनी ही तो बड़ी 'सती-साध्वी' हैं।

सुरेश के मुख पर पैशाचिक प्रसन्नता अट्टहास कर रही है। रे अधम, जिसके हृदय से लगकर यौवन का आनन्द उठाया, उसके प्रति ऐसा व्यवहार! जिसके रुपये से रुपयेवाला हुआ है, उसको मृत्यु के गर्त में ढकेलकर अब तू अपनी नवीन प्रेयसी के साथ सुख भोगेगा? रे स्वार्थी भ्रमर! तू 'मनुष्य' कहे जाने योग्य नहीं, तेरा काम है एक कलिका को सूँघकर दूसरी को चूसना। या यों कहें कि तू एक पत्तल को चाट-कर दूसरे को सूँघता है। याद रख, जिसे तुने अमृत समझा है, वह हालाहल का घूँट है। तू अमृत को यों ही मत ढरका दे। जिसे तू सुख समझा है, वह सुख नहीं—घोर दुःख है। तू सुख पर यों ही लात मत मार। एक विधवा का सतीत्व हरण कर उसे अपने जाल में फँसा अब तू परिणाम से डरता है। रे नीच! परिणाम से तू न डर, परिणाम तुझे मिलेगा ही। अपने ही पाप को किसी दूसरे का पाप बताकर तू पाप-फल से बच न जायगा। यदि परिणाम का तुझे भय था तो क्यों भोली अबला को सताया? और ऐसा किया भी था तो फिर डर किसका? तू लोकापवाद की क्या चिन्ता करता है? उससे तो तू बहुत दूर हट आया। तेरी काली करतूत और उससे भी काली यह कमाई देखने से पहले ही तेरा निर्धन पिता अमर-यात्रा के लिए प्रस्थान कर चुका है, और यह भी अच्छा ही हुआ कि वह आपने सामने तेरी छोटी बहन गायत्री के हाथ पीले कर गया है। तब तू किस भय

से अपने पाप-परिणाम को दूर फेंकना चाहता है ? क्यों न तू अपने पापमय जीवन को लेकर अपना अलग संसार बसाकर रहने का साहस कर पाया ? तू सब कुछ त्याग सकता है, पर किस हृदय से तू रोहिणी को त्याग रहा है ? अन्धे, इन्हें तू बेकस जानकर सता रहा है। हा, नहीं जानता इनके मूक रुदन में कितनी शक्ति, कितनी गर्जना भरी है। पामर ! तीन निरपराध प्राणियों की हत्या तेरे सिरपर है।

रोहिनी चुप खड़ी है। इस समय वह क्रोध और ग्लानि की साक्षात मूर्ति हो रही है। वह किसी से क्या कहे ! बहुधा देखा गया है कि जब किसी को कोई मनुष्य यातना देता है तो वह उस व्यक्ति को दोषी ठहराता है, ईश्वर को निर्दय बताता है। ऐसे विरले ही ज्ञानवान् होते हैं, जो अपनी बुराई देखने का प्रयत्न करते हैं—रोहिणी भी इन्हीं में से एक है। वह धिक्कार रही है अपनेको। पश्चात्ताप से उसका हृदय जल-कर राख हुआ जा रहा है।

"समझ समझ पग धरना प्यारे
नहिं पीछे पछताना होगा।"

—यह वह गीत है, जो उसके रोम-रोम से निनादित हो रहा है, जिसको वह स्वयं भी गुनगुनाती हुई चली जा रही है, और चाहती है कि जितने जोर से वह गा सके गाये, परन्तु कुछ है जो उसे ऐसा करने से रोक रहा है।

हाँ तो, अनुराधापुर की सड़कों पर रोहिणी एक फटी-सी धोती पहने अपने बच्चे की अँगुली पकड़े चली जा रही है। वह नहीं जानती उसे कहाँ जाना है। ईश्वर उसे जहाँ ले जाय।

रोहिणी भीख माँगकर निर्वाह नहीं कर सकती, राय-बहादुर की लड़की जो ठहरी। पूर्व पुरुषों के नाम को डुबाकर एक-एक क्षण जीना उसे दूभर हो रहा था। वह आगे बढ़ती थी, किन्तु गर्भवती होने के कारण पांव पीछे पड़े जाते थे।

बालक यमुना का अथाह जल देखकर घबड़ा गया। रोहिणी ने उसका हाथ कसकर पकड़ा; बच्चे के मुँह से एक चीख निकल गयी। क्षर भर केवल एक क्षण के लिए रोहिणी का हृदय दहल गया, पर वह दुर्बलता से दूर हट आयी थी। दृढ़तापूर्वक बोली—"भोगो बेटा, मेरी करनी का फल।" तुरन्त उसने उसे उछालकर नीली लहरों में फेंक दिया और दूसरे ही क्षण आप भी समा गयी यमुना की अगाध जल-राशि में। माता के हृदय में ऐसी कठोरता भी होती है! इसको देखकर कठोर से कठोर प्राणी भी तड़प उठेगा। वह माता, जो आजतक पुत्र पर जान देती थी, अब उसकी घातिका हुई!

किन्तु नहीं! पवित्र मातृहृदय की विवश पुकार यहाँ भी झलक रही थी। माता अपने प्यारे पुत्र, अपने कलेजे के टुकड़े को ठोकरें खाने के लिए कैसे छोड़ सकती थी। जो मर

गया, वह सुख की गोद में पहुँच गया ; जो जी रहा है, वह साँसें भर रहा है ; मृत्यु ही इस सांसारिक अत्याचार से पीड़ित प्राणियों को अपनी गोद में निर्भय शरण देती है—यही विचार इस माता के मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे। कोई उसे देवी कहे या दानवी वह उस पार पहुँच गयी थी, जहाँ की दीवारों से भी लोक-निन्दा टकरा नहीं सकती।

---

[६]

ढलती अवस्था होने पर भी उसके हाव-भाव में कमी नहीं आने पायी। उसका प्रधान कार्य है भोली-भाली चिड़ियों को अपने जाल में फँसाना और उनको ट्रेन करना। चिड़िया एक बार जाल में फँसी कि फिर बच कर नहीं जा सकती। इस जाल में फँसने के कुछ दिन बाद वह पंखहीन होकर नगर के कोठों पर मँडराया करती है। इस प्रकार फँसाकर लायी गयी सभी लड़कियां इलायची की भांजी-भतीजी या बेटी-नातिन लगतीं। व्यवसाय चल निकलने पर वे अपनी इन गुरुआनी को अतुल दक्षिणा दे मालामाल कर देतीं।

सन्ध्या का समय था। प्रायः नित्य के नियमानुसार सुरेश कुमार अपने एक मात्र मित्र और सहायक कुँवर साहब के साथ घूमते-घूमते रूप-हाट में आ पहुँचे।

एक दुकान से पान और सिगरेट लेकर दोनों एक कोठे पर जा पहुँचे। चतुर दुकानदार ने बड़ी आव-भगत से सत्कार किया—"आइये सरकार, मिज़ाज तो खुश हैं। आज बहुत दिनों बाद इस नाचीज़ के ग़रीबखाने पर तशरीफ़आबरी करके इज्ज़त अफ़ज़ाई की।"

"आजकल कॉलेज से कतई फ़ुरसत नहीं मिलती। पर ये

सुरेश बाबू तो, मैं सुनता हूँ, अपनी हाज़िरी में कमी नहीं करते ?"

"हाँ, बाबू ने तबियत बड़ी अच्छी पायी है। सरकार आज आपको भी एक ऐसी बढ़िया चीज़ दिखाऊँ कि आप भी कालेज—बोर्डिंग सब भूल जाँय। कहेंगे कि कोई चीज़ है।"

"ज़रूर! तारीफ़ तो मैंने भी बहुत सुनी है, पर जब दीदार हो, तो जानूँ।"

उसने पुकारा, "अरी ओ मुन्नी...मुन्नी!"

"हाज़िर हुई, अम्मीजान!" एक युवती आयी, और दोनों को एक लजीली मुसकान के साथ उसने सलाम किया। इलायची कमलपुर से हाल ही आयी हुई अपनी भांजी कहकर युवती का परिचय दिया। नेत्रों की भाषा में युवती को समझाती हुई इलायची थोड़ी देर में कमरे से खिसक गयी।

मुन्नी के प्रत्येक अंग में सौन्दर्य कूट-कूटकर भरा था—लम्बी अलकें, बड़ी-बड़ी आँखें, गोल-गोल कपोल, इकहरा बदन और पतली कमर। उसके सुन्दर आनन पर लज्जा अपूर्व हिलोरें ले रही थी। दो-एक चीज सुनते ही सुरेश कुमार तो मस्ती में झूमने लगे, पर कुछ था जो कुँवर साहब की पारखी दृष्टि से न बच सका। पहली दृष्टि में ही उन्हें मुन्ना के मुख पर जो कुछ दिखाई दिया, उसकी पुष्टि के लिए वे रह-रहकर कनखियों से उसे देख रहे थे, और स्मृति पर आघात पहुँचाकर उसे उसकाने का सतत प्रयत्न कर रहे थे।

वे स्पष्ट देख सके थे कि मुन्नी के भोले-भाले मुखड़े पर रह-रह-कर किसी आन्तरिक व्यथा की झलक दिखाई देती किन्तु आकाश में चंचला की कौंध की भाँति थोड़े ही काल में विलीन हो जाती।

अभीतक मुन्नी को जो संकोच था वह स्वाभाविक ही कहा जा सकता है, किन्तु उसकी पैनी अन्तर्दृष्टि से भी यह न बच रहा कि कोई उसे बारीकी से समझने का यत्न कर रहा है। यह कुछ भी न जानते हुए कि यह कौन व्यक्ति है और इसे कब-कहाँ देखा है, वह कुछ विशेष लज्जा से गड़ गयी। उसके गालों पर लाली की एक नयी रेखा दौड़ गयी, और तब उसका वह गाना जम न सका। बीच में ही उस रसीले गाने को समाप्त कर उसे यह बहाना करना पड़ा कि आगे उसे याद नहीं रहा।

कुँवर साहब का मन भी गाने में इस समय कुछ वैसा ही लग रहा था जैसा स्वयं गानेवाली का। सुरेश कुमार तनिक उठकर पान की पीक थूकने गये थे, तभी कुअर साहब ने साहस कर पूछा—"मैंने आपको अभीतक यहाँ नहीं देखा था। आपका यहाँ आना कब हुआ ?"

"अम्मी ने तो अभी अभी बताया ही था।"

"अच्छा, आप रंजीदा क्यों जान पड़ती हैं ?"

"कहाँ—कुछ भी तो नहीं। होऊँ भी तो आप जानकर भला क्या करेंगे ? फिर मैं बताने भी क्यों लगी ?"

"रहने दीजिये, यदि आप बतायेंगी ही नहीं, तो फिर पूछना बेकार है।"

रमणी कुछ क्षण के लिए चुप रही। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। दुखी मनुष्य से उसका दुःख पूछना उसके शोक-सागर में बाढ़ लाना है। रुँधे हुए कण्ठ से उसने कहा—"आप जानना चाहते हैं तो बताऊँगी क्यों नहीं। बताऊँगी, पर वक्त आने पर।" तभी सुरेश के आ जाने से उसे अपने आँसुओं को पी जाना पड़ा और कुँअर साहब भी गाने की सराहना करते हुए बातचीत की धारा दूसरी ओर मोड़ने का प्रयास करने लगे।

सुरेश के आग्रह से रमणी को दो-एक गाने और भी गाने पड़े, और कुँअर साहब भी उन गानों से मन के तूफ़ान को किंचित दबा रखने का प्रयत्न करते बैठे रहे। किन्तु गाना समाप्त होने पर जब दोनों मित्र चलने को हुए तब कुँवर साहब को रमणी के कान में अपना समय बता रखने का अवसर मिल ही गया।

---

[१०]

धीरे-धीरे गायत्री की भी झेंप खुली और वह प्रेम का पाठ पढ़ने लगी। अब वह वकील साहब के प्रत्येक नयन-वाण को अपनी तिरछी चितवन से काटकर फेंक देती, परन्तु कमी जो थी वह यह कि वह अपनी ओर से बहुत कम—प्रायः नहीं के बराबर, वाण चलाती। मनहरन तो स्वयं घायल होना अच्छा समझते थे। उनके मन में एक यही अरमान था। उनकी मलिनता न गयी, खिन्नता अब भी बनी रही।

गायत्री इसका कुछ कारण नहीं समझ सकती थी; उसे अपनेमें अनेक अभाव खटकते, परन्तु फिर सोचती, पति देव मुझे कितना चाहते हैं, मैं उनके साथ अन्याय कर रही हूँ। निदान भरसक मीमांसा करने के बाद भी जब वह अपने मन-हरन की उस कभी-कभी की उदासी का कोई अर्थ न समझ सकी, तब एक दिन पूछ ही बैठी "नाथ, जब से मैं ब्याह कर आयी हूँ, आप कभी-कभी कुछ उदास से क्यों रहते हैं? क्या अपनी इस उदासी का कारण बतायेंगे?"

मनहरन कुछ अप्रतिभ जान पड़े। फिर कुछ संभलकर बोले—"गायत्री क्या तुम मेरी उदासी का कारण नहीं जानती? तुम जानती हो, अच्छी तरह जानती हो।"

"नाथ, यदि मैं जानती .....।"

"विश्वास तो नहीं होता, तुम नहीं जानती हो। यदि नहीं जानती हो, तो अच्छा ही है। जानकर करोगी भी क्या? पर मैं अपने दिल को कैसे समझाऊँ, तुम नहीं जानती?"

"स्वामी, क्या मुझपर विश्वास नहीं? मैं आपकी अर्धांगिनी....."

"गायत्री, क्या कहा—मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ? हाँ हम विवाह के बन्धन में जो बँधे हैं—किन्तु तुम मुझसे प्रेम तो नहीं कर सकतीं। मेरी चिन्ता तुम हो। हा, मैंने तुम्हारे जीवन को नष्ट कर दिया। इसके लिए मैं उत्तरदायी हूँ। दोषी हूँ ईश्वर के दरबार में और अपराधी हूँ तुम्हारा। यदि मैं जानता कि कोई बालिका मुझसे प्रेम नहीं कर सकती, तो मैं विवाह नहीं करता। किन्तु हा, अब अपने सुख के लिए....."

"प्रियतम, मैं समझ नहीं पा रही हूँ, आपने मेरा जीवन किस प्रकार नष्ट कर दिया। आपके सिवा मेरा बैठा ही कौन है? आपसे प्रेम न करूँगी, तो और किससे करूँगी? मैं तो सदा यही सोचती थी कि शायद ही कोई मुझसे विवाह करे, और विवाह भी होगा तो वह मुझसे प्यार न करेगा। आप मुझे कितना चाहते हैं।

"कृतज्ञता की बात दूसरी है, और प्रेम की दूसरी।"

"मैं किस प्रकार आपको विश्वास दिलाऊं ! मेरी समझ में नहीं आता कि आपमें ऐसी कौन-सी कमी है, जो मैं आपसे प्रेम नहीं कर सकती। सातो सुख"।

"मैं बूढ़ा हूँ, यही बड़ा दुःख है।"

"नाथ, मैं अपने दिल की कैसे सफाई दूँ ? मैं भी तो काली हूँ। जब आप मुझसे प्रेम...।"

"हाँ, हाँ ! बोलो, तब आपके बूढ़े होने पर क्या मैं आपसे प्रेम नहीं कर सकती—क्यों, यही तुम्हारा तर्क है न ?"

"ऐसे बूढ़े तो आप हैं नहीं जैसा आप...।"

"तुम भी कब ऐसी काली हो ?"

"मैंने स्वप्न में भी इसका ध्यान नहीं किया था कि आपकी अवस्था मुझसे अधिक है। स्वामी, इस वैवाहिक बन्धन में ही आठ गाँठ रस होता है। किसीने कहा है—प्रेम अन्धी मूरत है। वह अवस्था, धन और रूप-रंग नहीं देखता, मेरे स्वामी। प्रेम हृदय को पहचानता है; हृदय ही उसका घर है। यदि दिल चीरकर दिखा सकती।"

"बस, अब और सफाई नहीं चाहिये।"

वकील साहब ने प्रेमावेश में गायत्री को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

दिन बीतते देर नहीं लगती। तीन चार वर्ष बीत गये। गायत्री से वकील साहब के एक पुत्री और एक पुत्र उत्पन्न हुआ, घर में खुशी का फौवारा छूटने लगा।

किन्तु हा ! क्रूर काल से गायत्री का सुख न देखा गया। वकील साहब ने ऐसी खाट पकड़ी कि फिर उठ न सके। अठारह-उन्नीस वर्ष की इस विधवा को मँझधार में छोड़कर मनहरन चल बसे। गायत्री का सुहाग छिन गया ; इस भरी जवानी में रो-रोकर दिन काटने लगी।

---

[११]

दो-दो छोटे भाइयों की मृत्यु और फिर भतीजे का शोक—यह कौन-सा क्रम ? पण्डित बैजनाथ का कलेजा टूट गया। पण्डितजी को स्वजनों की मृत्यु का उतना अधिक दुख नहीं होता जितना यह बात मन में उठने पर होता कि "मैं यह सब देखने को क्यों बचा हूँ !" वे यह बराबर दुखी होकर सोचते—"मुझसे छोटे-छोटे उठ जायँ और मैं सब आँखों देखूँ। विधि का यह कैसा नियम !"

गायत्री संसार में अपना कहीं सहारा न पाकर अपनी तीन वर्ष की पुत्री कला और साल-भर के बेटे राजेश को लेकर दर्शनपुर आ गयी। बेचारी को और कहीं कोई आसरा ही कहाँ था !

घर में भाई और भतीजे की दो-दो विधवाओं को, एक पितृहीन भतीजे को, दो अबोध असहाय नाती-नातिन को, एक हतभागिनी पुत्रवधू और एक कुलबोरन पुत्र को देख-देखकर पण्डितजी की छाती फटती थी। कहीं से कोई तो आसरा नहीं ! आशा की एक किरण भी नहीं !!

भतीजे की मृत्यु के अभी पूरे तीस दिन भी न बीतने पाये थे कि पंडितजी ने खाट पकड़ी। सात दिन बीमार रहे। साधारण मौसमी बुखार किसको नहीं होता ? पर उनके लिए वही मौत का परवाना लेकर आ पहुँचा था। उनका मरना क्या

हुआ, घरवालों पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। किन्तु कृपाशंकर को किंचित् प्रसन्नता हुई; आँखों का काँटा निकल गया।

और दाह-संस्कार-अन्त्येष्टि-क्रिया समाप्त हो चुकने के बाद जब बक्स-सन्दूक खोले गये तब केवल तिरपन रुपये कृपाशंकर के हाथ लगे। सारी आशा-आकांक्षा मिट्टी में मिल गयी। वह सोचता, रुपये गये कहाँ; क्या बुड्ढा रामू को तो कुछ नहीं दे मरा? बस, ईर्ष्या भड़क उठी।

ईर्ष्या मनुष्य की बुद्धि को कुंठित कर देती है। उसने यह न सोचा कि इधर एक मास से आमदनी कुछ हुई न थी और फिर इतनी बड़ी गृहस्थी को बैठे-बैठे खिलाना। किन्तु कृपाशंकर यह सब क्यों सोचने लगा? उसने सबको साफ जवाब दे दिया कि अपना प्रबन्ध करें। इसके अतिरिक्त उससे किसी को आशा भी क्या थी?

कृपाशंकर वहाँ रुका नहीं। कुछ देर के लिए सब चुप रहे। गायत्री राधा का मुँह देख रही थी, राधा गायत्री का। रामू की आँखें माँ के चेहरे से हटकर भावज के चेहरे पर लग जातीं। गायत्री की दृष्टि थककर रामू के भोले आनन पर जम जाती। कुछ भी हो, उसने अपनी सास राधा के आश्रय में रहना उचित समझा।

राधा ने मौन-व्रत भंग करते हुए कहा—"बेटा, अब?"

"अब क्या?" रामू का उत्तर था—"सेठजी का मकान खाली है, वह मिल जाय तो............।"

माँ ने कहा—"यह ठीक है।"

"अच्छा तो मैं जाता हूँ"—कहकर रामू चल दिया। सेठजी के पास पहुँचा। वे बोले—"कोई बात नहीं, मकान तुम्हारा है। चाभी ले जाओ और मौज से रहो। हम तुम्हारी और सेवा करने से रहे, तो क्या हमसे यह भी न होगा?"

सेठजी से चाभी लेकर रामू माँ के पास पहुँचा। सामान उठाया जाने लगा; गायत्री भी इस मकान में अपना निर्वाह न होते देख ठहरना नहीं चाहती थी। साँझ होते-होते राधा और गायत्री दोनों नये मकान में उठ आयीं। गायत्री के पास कोई तीन हजार रुपये के मूल्य के जेवर थे, कुछ रुपये नकद भी थे; किन्तु राधा के पास क्या था? रामू को सात रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी, दो जगह ट्यूशन करने से भी कुछ रुपये मिल जाते थे। किसी प्रकार दिन बीतने लगे। दूसरे साल रामू ने मैट्रिक की परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। नगर में रामशंकर का नाम हो गया। माँ और भावज की खुशी का ठिकाना न रहा।

उधर कृपाशंकर ने एक दूकान की—चली नहीं। रुपया जब उड़ा दिया, तब आँखें खुलीं। यार लोग हवा हो गये, फ़ाकामस्ती होने लगी। सुन्दरी को कुछ दिनों के लिए नैहर भेज दिया, रहा-बचा काँटा भी जाता रहा। उधर सुन्दरी ने भी बहुत दिनों से नैहर नहीं देखा था। दूसरे वह पतिगृह से उकता गयी थी, पतिदेव से तंग आ चुकी थी।

[१२]

पन्द्रह वर्ष की अवस्था ! रामशंकर हाईस्कूल से निकला। नौकरी की तलाश हुई। बहुत दौड़-धूप, चला-फिरी करने पर तीस रुपये मासिक पर किसी सेठ के यहाँ नौकरी मिल गयी। किन्तु, दैव प्रकोप ! माता बेटे की कमाई का सुख अधिक न देख पायी। अपने प्यारे बेटे को कठिन जीवन-समर में छोड़ चल बसी। बेचारे बालक पर विपत्ति का पहाड़ गिरा। बाप का उसने सुख ही क्या देखा था ? रामशंकर को प्रतीत होता, मानों संसार में अब उसका कोई नहीं। किन्तु उसकी भावज गायत्री ! इस विपत्ति-काल में गायत्री ही उसे ढाढ़स बँधाती। गायत्री की सहानुभूति, उसकी सांत्वना के कारण रामशंकर के हृदय में गायत्री के लिए विशेष स्थान हो गया। वह सोचता, मेरा अब भी कोई अपना है।

उधर सुन्दरी अपने नैहर से आ चुकी थी। कृपाशंकर ने तो नहीं बुलाया था ; वह लगभग दो साल के बाद आप ही आयी थी। उसके कुछ दिन मैके में खुशी से कटे किन्तु बाद को वह उदास-चित्त रहा करती। न जाने घर उजड़ा होगा या बना होगा—बनने की आशा ही क्या थी ? यही चिन्ता सुन्दरी को व्याकुल करती। वह फिर से अपना घर देखने को विकल हो रही थी।

जब चचिया सास की मृत्यु का पत्र पहुँचा, तब आने का अच्छा बहाना भी मिल गया। वह अब मैके में न ठहर सकी। रामशंकर माता की मृत्यु का पत्र भेजना तो नहीं चाहता था, परन्तु गायत्री के आग्रह के कारण वह पत्र भेजने को बाध्य हुआ। इससे सुन्दरी का तो अवश्य कुछ उपकार हुआ, किन्तु रामशंकर के लिए……। परिणाम यह हुआ कि कृपाशंकर के हृदय में रामू के प्रति और भी द्वेष तथा वैमनस्य भड़क उठा।

यहाँ का रंग-ढंग सुन्दरी ने वही पाया। नौकरी के मिल जाने से पति में इतना परिवर्तन अवश्य हुआ कि फिर से उस कहारी का प्रेम सवार हुआ। पर सुन्दरी के लिए यह परिवर्तन सुखमय था अथवा दुःखमय? फ़ाका करने से तो उसका पेट ही जलता, परन्तु कहारी की सूरत से तो सारे शरीर में विषम अग्नि भभक उठती थी।

पति से कई बार उस कहारी को छुड़ा देने का हठ किया, मिन्नतें भी कीं; किन्तु फलस्वरूप बारबार मार खाती रही। कृपा के व्यवहारों से, उसकी गालियों और झिड़कियों से और आये दिन की मार-पीट से वह तंग आ चुकी थी; किन्तु अब वह सब झेल लेती। अपनी आँखों सब कुछ देखते रहना, मन ही मन कुढ़ा करना—यह सब कुछ उसे स्वीकार था पर वह यहाँ से टलना नहीं चाहती थी। इसमें उसे अधिक अनिष्ट की आशंका थी।

कभी-कभी वह दो घड़ी के लिए जेठानी के पास जाकर रो लेती और हृदय का भार हलका कर आती। कभी-कभी

गायत्री भी सिर पर चादर डालकर हो आती, किन्तु न जाने क्यों यह सब रामशंकर को असह्य प्रतीत होता। उसने एक दिन गायत्री से साफ कह दिया—"भाभी, यह ठीक नहीं। मुझे यह पसन्द नहीं।"

वह बोलीं—"लाला, अपने आप आ बैठती हैं, मैं तो बुलाने नहीं जाती; और न मैं मना ही कर सकती हूँ। हाँ, जो तुम कहते हो, सो मैं अब न जाऊँगी। उस दिन बुलाया था, तो तनिक जाकर-खड़ी हो गयी थी।"

"ठीक है। तुम्हारा मना करना भी ठीक नहीं। मैं ही अब मना कर दूंगा।"

मौका मिलते देर न लगी। सुन्दरी गायत्री के पास से घर जा रही थी; उसी समय रामू भी वहाँ आ पहुँचा। सुन्दरी ने पूछा—"आ गये, लाला!" रामू ने सुना-अनसुना कर दिया। तमककर सीधा गायत्री के पास पहुँचा। बोला—"भाभी, मुझे यह पसन्द नहीं। किसी के घर आने जाने की कोई

रामू ने पैर हटाते हुए कहा—"कसूरवार मैं हूँ।"

सुन्दरी ने कहा—"लाला, मैं तो वैसे ही दुखिया हूँ। तुम भी नाराज़ हो। क्या इस घर में……?"

रामू का उत्तर था—"नहीं, नहीं! मैं कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता।"

गायत्री चुपचाप सब सुन रही थी। सुन्दरी का सरल प्रश्न था—"किसी के कसूर की किसी को सज़ा?"

मनोमालिन्य ने हृदय और मस्तिष्क दोनों को ही संकुचित कर रखा था। यदि उसे भाई से कुछ द्वेष था, तो था; किन्तु भाभी ने क्या किया था? रामशंकर अब अधिक न ठहरना चाहता था। वह चुपचाप वहाँ से चलने लगा। सुन्दरी ने रोकते हुए कहा—"बताओगे नहीं, लाला।"

"जरूरत नहीं"—कहकर भाभी का हाथ हटाते हुए रामशंकर बाहर चल दिया। सुन्दरी ने सुनाते हुए कहा—"लाला, तुमसे तो मुझे ऐसी आशा न थी?"

गायत्री ने कहा—"बहू, ठहरो तो। बात तो सुने जाओ।" किन्तु सुन्दरी वहाँ ठहरी नहीं, उसका हृदय उमड़ा चला आता था।

सचमुच गायत्री को बहुत बुरा लगा था। वह उदास थी, मन मारे बैठी थी। रामशंकर दो घंटे पीछे जब घर में आया, तब भावज को उदास देखकर पूछा—"भाभी, आज उदास क्यों हो?"

बोली—"कुछ नहीं।"

"कुछ तो ?"

"मैं तो उदास नहीं।"

"मैं कैसे मानूँ ?"

"तुमने यह ठीक नहीं किया।"

"क्या छोटी भाभी·····।"

"वह तो आप ही राम की मारी है।"

"हाँ, यह बात तो खराब हुई, पर अब ?"

"अब क्या ? कल कला को भेजकर बुलवा लूँगी। कोई बात नहीं।"

"ठीक है। बस, इतनी सी बात के लिए ?"

गायत्री का हृदय खिल उठा और मुख पर भी प्रसन्नता खेलने लगी।

दूसरे दिन सुन्दरी आयी, और रामू ने मॉफी माँगी। छोटी भाभी ने—"वह कुछ नहीं था"—कहकर माफ भी कर दिया। सुन्दरी का आना कुछ दिनों के लिए बना रहा, किन्तु एक दिन सहसा बन्द हो गया। कृपाशंकर ने फटकार सुनायी—"अब जो तुम वहाँ गयी, तो पाँव काट लूँगा।" बेचारी करती क्या ? रात-दिन रोया करती, कोई सुख-दुख की बातें करने के लिए भी तो वहाँ न था, जिससे अपना दुखड़ा रोती।

[१३]

"जवानी की दुआ लड़कों को नाहक लोग देते हैं।
यही लड़के मिटाते हैं जवानी को जवाँ होकर ॥"

वह नवयौवन का उषाकाल था। एक दिन उसने अपने को जवान पाया। संगति—अच्छी या बुरी, उसने आजतक की किसी की न थी। न जाने क्यों? कदाचित् स्वार्थ, छल, प्रवंचना ही इस घृणा के कारण थे। सिनेमा उसने आजतक कभी देखा न था। उपन्यास वह जानता न था। वह तो जवानी का जोश था। बिना जाने हुए, बिना समझे-बूझे, कि 'प्रेम किसे कहते हैं, जवानी किसे कहते हैं' वह जवानी की मौजों में प्रेम के मीठे सपने देखने लगा। रामशंकर के जीवन में अल्हड़ नवयौवन आया।

दुनिया रूप पर मरती है—वह कुछ रूपवती भी न थी; किन्तु कुछ था, जो रामशंकर के हृदय में बिंधा चला गया। उसको नवयौवन का एक ही अरमान था, और वह था गायत्री को पाना। उसका वह अरमान गायत्री के स्थान पर किसी सावित्री को पाकर भी मिट सकता था अथवा नहीं, यह एक विचारणीय मनोरहस्य है।

गायत्री पति-शोक को कुछ कुछ भूल चुकी थी। भरी जवानी थी, प्रेम करने की उमंग थी। वह अपने मन को

नियंत्रण में रखने की लाख चेष्टा करती, किन्तु.....। किन्तु रामशंकर में उसने वह चीज पायी थी, जो उसके हृदय को बरबस उसकी ओर खींच रही थी। उसी शक्ति की अवहेलना कर, उसे स्नेह बताकर वह अपनेको धिक्कारती कि वह क्या कर रही है। "मैं कैसी हो गयी हूँ"—उसे अपने पर आश्चर्य होता; वह अपनेको समझ न पाती। मन बे-काबू था; यह वह घोड़ा है, जिसकी लगाम एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर इसे नियंत्रण में रखना बस की बात नहीं। हाँ, तो गायत्री का हृदय दो विरोधी भावनाओं का घर बना हुआ था।

उधर रामशंकर प्रेम की भूल-भुलैयों में पड़ा हुआ था—न जाने कब से। वह उससे दूर निकल भागने का कितना प्रयत्न करता, किन्तु यह उसके लिए कठोर था, छुटकारा पाना वह असम्भव समझता। वह उस प्रेमाग्नि में जला करता और आह भरा करता। उसका हृदय अशान्ति और विषाद का क्रीड़ा-क्षेत्र हो रहा था। उसके गोरे-गोरे गुलाबी गाल अब मुरझाये-से रहते, शरीर कान्तिहीन हो गया था, देह पीली पड़ गयी थी, मस्तिष्क सदैव उत्तप्त रहने लगा था। वह जितना ही प्रेम के इस चक्कर से, इस जाल से दूर भगाने का प्रयत्न करता, उतना ही उसमें और भी जकड़ता चला जाता। वह सोचता—"गायत्री मेरी बड़ी भावज है। एक आश्रयहीना विधवा है। हाय, किधर, मैं किधर जा रहा हूं। मुझपर

यह कैसा ख़ब्त सवार हुआ ! क्या मैं इसकी लहरों में बह जाऊँ ? नहीं, मैं अपना जीवन नष्ट कर रहा हूं और उसे भी कर्तव्य-पथ से विचलित कर रहा हूं।" परन्तु ओफ, दूसरे क्षण विचाररज्जु ढीली पड़ जाती। ओफ, इस पाप-पथ में कितना आकर्षण है ! वह तो गायत्री को चाहता था।

बीस वर्ष की यह विधवा, जिसकी मनोवृत्ति को पति के वे लीला-लोल कटाक्ष एक बार भड़का चुके थे, और जिस मनोवृत्ति को वह अबतक दबाये हुई थी, अब तो वह फिर से उबाल खाया चाहती थी। सोलह वर्ष का यह कुमार, जो प्रेम-सरिता में होते हुए भी प्रेम-रस का पान नहीं कर सकता था, यदि उसके पान के लिए लालायित हो उठे, तो आश्चर्य ही क्या ?

दोनों के हृदय में प्रेम था। मानों प्रेम-रूपी सरोवर में तैरनेवाले ये दो तैराक थे, जो एक दूसरे की ओर तैर रहे थे और तैरकर पास भी जा पहुँचे थे ; किन्तु बीच में पुरैन के पात बिछे हुए थे, जिन्हें देखकर कुछ देर के लिए ठिठक गये थे। वे कुछ दूर—अलग एक ओर को होना चाहते थे, किन्तु उधर सिंघाड़े की बेल बिछी हुई थी, और वे काँटों का सामना करने के लिए तैयार न थे, अथवा प्रेमसमुद्र में तैरनेवाले ये दो नाविक थे, जो अपने-अपने स्थान पर पहुँचना चाहते थे ; परन्तु सुदूरतक फैले जल-प्रान्त में बड़ी देरतक हाथ-पैर चला चुकने के बाद अब थककर कुछ देर के लिए विश्राम लेना

चाहते थे, और इसी समय प्यास लग आयी थी। तृषित हो रहे थे, प्यास बुझाना चाहते थे ; किन्तु प्रेम-समुद्र के उस खारे जल का पान करने में कुछ हिचक रहे थे, किन्तु..... ।

भूख जूठा भात नहीं देखती, नींद टूटी खाट नहीं देखती और प्रेम पात्र-कुपात्र को नहीं देखता। हाँ तो, दोनों एक दूसरे के लिए पागल हो रहे थे। रामशंकर को प्रतीत हुआ, जैसे वह अब और अधिक अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकता। उसकी रक्त-शिराओं में उन्माद वेग से प्रवाहित होने लगा। वह पाप-पथ की ओर तीव्र गति से उन्मत्तों की भाँति अग्रसर हुआ और पाप-सरिता की उत्ताल तरंगों में वह कभी न बुझने-वाली प्यास लेकर बह चला।

वह माघ मास की सन्ध्या! और वह स्त्री!! वह अभागिन गायत्री ही थी, जो अपने पाप-परिणाम को संसार की दृष्टि से छिपाने के लिए उस समय तालाब के किनारे गयी थी। पास ही वह रहती थी। घर पर पाप-फल को रखने से अवश्य ही सारी कलई खुल जाने की सम्भावना थी। हा, उस समय गायत्री के मस्तिष्क में कैसे-कैसे विचार उठ रहे थे! कैसी-कैसी भावनाएँ हृदय में अठखेलियाँ कर रही थीं!

पाप कोई वस्तु नहीं। समाज की बनायी हुई रूढ़ियों की अवहेलना करने का ही नाम 'पाप' है। इसी पाप को छिपाने के लिए ऐसे-ऐसे भीषण कृत्य हुआ करते हैं।

रामशंकर जन्म से ही कोमल प्रकृति का था। वह एक अबोध शिशु की हत्या का भार सिर पर नहीं लेना चाहता था। उस समय के उसके वे शब्द—"हमारे लिए इस समाज में अब जगह नहीं। हमारा समाज हमारा अपना होगा'—कुछ अर्थ रखते थे। किन्तु गायत्री इसके लिए सहमत न थी। उसने कहा था—"दो हृदयों का मेल ही विवाह है।"

---

[१४]

कुँवर साहब ने जिस शान्ति की थोड़ी-सी झलक कभी अपनी ससुराल में अपनी पत्नी की सहेलियों में देखी थी, वही अब अनुराधापुर में मुन्नी के नये नाम से उनके सामने थी। चिकनी मिट्टी देखकर व्यभिचारी फिसल ही पड़ते हैं, और कुँवर साहब भी बहुत दिनों से रूप के हाट में बिचरते हुए गहरा तैरने के अभ्यस्त हो चुके थे ; किन्तु यहाँ पर थोड़े-से कुछ पूर्व-परिचय ने बड़ा काम किया। यौवन का मोल-तोल करनेवाला यह मनचला रईस शान्ति की आँखों में एक करुण निवेदन देखकर यह कदापि नहीं चाहता था कि वह यहाँ इस दासता के पाश में दूसरे के लिए अपने शरीर को बेचा करे, किन्तु बुढ़िया के कड़े नियंत्रण में वह थी और अधिक समय बीतने पर अधिक अनिष्ट की आशंका थी—खान-पान तो इस असहाय ब्राह्मणबाला का भ्रष्ट किया ही जा चुका था।

कुँवर साहब ने सुरेशकुमार से भी कुछ अधिक देकर इलायची को लुभा लिया था। किसी-न-किसी प्रकार एकान्त के कुछ विशेष अवसर निकालकर और हृदय की सच्ची संवेदना उँड़ेलकर शान्ति के वे विशेष निकट जा पहुँचे थे। शान्ति ने उन्हें बताया था कि वह अपनी ससुराल के एक पुरोहित की पुत्री है। बारह वर्ष की अवस्था में ही

उसकी माता उसे छोड़कर चल बसी। एक वर्ष पीछे उसके पिता का दूसरा विवाह हुआ। विमाता का व्यवहार शान्ति के प्रति विवाह होने के समय से ही कठोर था और दिन पर दिन शान्ति के लिए वह व्यवहार असह्य होता गया। उसके पिता भी, जो कभी बड़े लाड़-प्यार से उसे रखते रहे, अब उसकी अवहेलना करने लगे और वह दिन-दिन घुलती गयी। विमाता को गानवाद्य सिखाने के लिए एक मास्टर आने लगे, और एक दिन शान्ति ने उन मास्टर साहब के साथ अपनी विमाता की प्रणय-लीला का कुछ आभास पा लिया।

इसके बाद शान्ति का शान्ति के साथ घर में रह सकना सम्भव न रहा। वह विमाता, जो अपने आचार खो चुकी थी, इस परायी सन्तान के लिए भला कौन-सी मर्यादा का पालन करती? उसने अपनी सुरक्षा एक इस बात में देखी कि अपने उन्हीं मास्टर साहब से शान्ति का भी साहचर्य करा दे। विमाता के इस प्रस्ताव और उन मास्टर साहब की छेड़-छाड़ से यथाशक्ति बचे रहने का उसने कुछ समयतक पूरा प्रयत्न किया। उसने अपनी विमाता को बहुत विश्वास दिलाया कि वह इन सबके विषय में पिता से या किसी भी अन्य व्यक्ति से कुछ न कहेगी। और वह यह भी तो जानती थी कि वह कुछ प्रकट भी करना चाहे तो नयी पत्नी के मोह-जाल में आबद्ध उसके पिता उसकी बातों पर विश्वास नहीं कर सकते थे।

पिता के घर में निराश्रया शान्ति, उमड़ते हुए यौवन को लेकर अपने एक तरुण पड़ोसी से थोड़ी-सी सहानुभूति पाकर उसकी ओर आकृष्ट हुई और उसकी माता को तिल का ताड़ बनाने का बहाना मिल गया। उसने बात-बात में शान्ति का तिरस्कार करना प्रारम्भ कर दिया। यही नहीं, विमाता ने एक बूढ़े विधुर के साथ शान्ति के हाथ पीले करके कुल की लाज बचाने के अपने योग्य प्रस्ताव में देर नहीं की, और जब पिता उसकी व्यवस्था में जुट गये, तब उसने एक महती भूल की। उसने स्पष्ट कह दिया कि वह विवाह करेगी तो अपने उस पड़ोसी से।

समाज का शासन स्वेच्छा पर निर्भर है। उसकी आँखों में एक हिन्दू कन्या का उसकी आज्ञा प्राप्त किये बिना अपना वर चुनना खटकनेवाली बात है। अचरज की बात है कि स्वधर्म-पालन करते हुए भी मनुष्य समाज का क्रोधभाजन हो सकता है। समाज शान्ति के द्वारा वर चुने जाने के पहले अपराध को क्षमा कर सकता है; उसे वह विस्मृति के पानी से धो सकता है, उसपर अज्ञान का कलफ दे सकता है। सिन्दूर की आड़ में शान्ति की विमाता की रँगरेलियों में तो समाज किसी कलंक का आरोप करने में भी समर्थ नहीं। किन्तु स्वधर्म होते हुए भी माता-पिता द्वारा निर्वाचित दूसरे वर की अवज्ञा समाज की दृष्टि में अक्षम्य अपराध एवं गुरुतम पाप है। यह ऐसा धब्बा है, जिसका धुलना हमारे इस धोबी के बस की बात नहीं।

शान्ति ने बताया कि किस तरह उसके पिता ने उस कल-मुँही से छुटकारा पाने के लिए सपरिवार तीर्थ-यात्रा का आयोजन किया। संध्या समय हज़ारों की भीड़ में उसका साथ कुछ जान-बूझकर ही छोड़ दिया गया। और जब वह घबड़ायी हुई एक पेड़ के नीचे खड़ी थी, इस बुढ़िया ने उसे सांत्वना दी, और फिर बड़ी चतुराई से बातें बनाकर वह उसे अपने साथ अपने मकान पर ले आयी जहाँ आकर शान्ति ने समझ लिया कि वह जीते जी नरक में आ पहुँची है। किन्तु विवश, निरुपाय होकर वह बुढ़िया की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य हुई।

किस प्रकार नरक की भयंकर ज्वालाएँ शान्ति को जलाया करती हैं और किस प्रकार आत्मा उसे धिक्कारा करती है कि वह कहाँ आ पहुँची है, और कैसे वह जीवन-मोह पर विजय पाने में अबतक असमर्थ हुई है—इत्यादि रहस्य जानकर कुँवर साहब का कठोर हृदय भी विचलित हुए बिना नहीं रहा।

[१५]

किसी ने सत्य कहा है— "होती नहीं भीति में प्रीति।" भय जहाँ है वहाँ प्रेम टिक नहीं सकता, और प्रेम जहाँ है वहाँ भय कैसा? किन्तु सच्चा प्रेम वही है जहाँ धर्म है, और धर्म में भय नहीं—भय तो अधर्म की भूमि में ही उत्पन्न होता है। लोकापवाद के भय की भूमि में प्रेम का पौधा अधिक दिनों-तक हरा-भरा नहीं रह सकता; कुछ ही दिनों में वह मुरझा जाता है। लोग जब अपने उन्माद में वासना के चटक-मुलम्मे को प्रेम की यथार्थ पवित्रता समझने लगें, तो क्या कहा जा सकता है?

गायत्री के हृदय में रामशंकर के प्रति प्रेम या वासना का जो बीज अंकुरित हुआ था, उसको बदनामी के भय ने उखाड़ना प्रारम्भ कर दिया था, और वह जो-कुछ था अब लुप्त हुआ चाहता था। रामशंकर की मूर्ति उसके हृदय के जितने ही समीप थी, अब वह उसे अपने से उतनी ही दूर करना चाहती थी।

मनुष्य किसी कुप्रवृत्ति के वशीभूत होकर चाहे कोई काम कर ले, किन्तु उसकी आत्मा उसे सत्पथ की ओर ही खींचती है। रामशंकर को भी अब आत्मग्लानि हो रही थी। वह अब गायत्री से खिच रहा था। किन्तु रामू के

खिचने और गायत्री के खिचने में महान् अन्तर था, गायत्री रामू से खिचना चाहती थी बहुत दूर, परन्तु रामू खिचकर एक बार फिर उसी स्थान पर पहुँचना चाहता था—वहीं, जहाँ वह कभी था।

रामशंकर अपने को धिक्कारता, सोचा करता और शून्य आहें भारा करता—"हा, मैं कैसा पागल हो गया था! अपने को भूल बैठा! और गायत्री? वह भी अपने को खो बैठी! किन्तु नहीं, इस पाप-पथ की ओर उसे घसीटनेवाला कौन? उस समय यह विवेक कहाँ गया था? मूर्ख हृदय तेरे बहकावे में आकर मैंने सर्वनाश कर डाला! हाय, कैसे इस पाप का प्रायश्चित्त करूँ? मैं समझ रहा हूँ, सोच रहा हूँ, और अच्छी तरह जान रहा हूँ। मेरी आत्मा इस पाप के भार से दबी जा रही है। किन्तु अब क्या? हाथ की बात नहीं।"

पतन के बाद उत्थान कितना सुन्दर होता है! जितना ही उत्थान के बाद पतन भयावह, उतना ही पतन के बाद उत्थान मनोहर—आकर्षक। रामशंकर एक बार फिर से गायत्री की मूर्ति को अपने मन-मन्दिर में उसी रूप में प्रतिष्ठित करने में समर्थ हुआ था, जिसमें वह आज से साल भर पूर्व थी। हाँ, कभी-कभी हृदय में कुछ विरोधी भावनाएँ अवश्य उठतीं, किन्तु दूसरे ही क्षण विवेक उन्हें नष्ट कर देता। शनैः शनैः हृदय की वे भावनाएँ लुप्त हो चली थीं।

किन्तु गायत्री थी हाड़-मांस की पुतली, साधारण-सी स्त्री।

उसमें दुर्बलताएँ थीं, और वह उन्हीं दुर्बलताओं को दूसरों में भी समझती थी। उसने शायद दुर्बलताओं के सामने सिर झुकाना ही सीखा था। वह कभी सोचती—"यह सब आडम्बर है, कुछ ही दिनों की बात है। बीच में धर्म की दीवार उठ जाने पर कौन जानता है, संयम का यह बनावटी बाँध कब टूट जाय।" कभी सोचती—"क्या मैं ही अपने को शान्त रख सकती हूँ? घृत और अग्नि का मेल सम्भव नहीं। पिछले दिनों चिन्ता की जिस ज्वाला में जली हूँ, उसने मुझे संयम तो पूरा सिखा दिया है, पर यहाँ, इस घर में, इतने पास रहकर भी क्या वह सम्भव होगा?"

बात यह थी कि रामू पर से गायत्री का विश्वास जाता रहा था, और उसका विश्वास उठ गया था अपने हृदय पर से भी। गायत्री रामू से दूर भागना चाहती थी, किन्तु कहाँ?

---

*

[१६]

कृपाशंकर की आय कम थी, और व्यय बढ़ा-चढ़ा था—आधी से अधिक कमाई उस कहारी की भेंट हो जाती। वह तो सुन्दरी थी, जो उस आधे में भी किसी प्रकार पूरा डाल रही थी। कृपाशंकर को जुए आदि के अपने व्यसन के लिए खर्च की जितनी तंगी अखरती थी, उतनी घर के खाने-पीने और कपड़े-लत्ते की नहीं। अब वह किसी प्रकार अधिक से अधिक रुपयों का प्रबन्ध करने लगा, क्योंकि अब व्यय उसकी क्षमता के बाहर था। पास में रुपया होने से मन बढ़ जाता है, किन्तु रुपया कम हो जाने से मन उतना घटता नहीं। आगे पैर बढ़ाकर पीछे पलटना कृपाशंकर के बस की बात नहीं। वह किसी प्रकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रुपये जुटाने का प्रबन्ध करने लगा; नीयत बेईमानी पर उतर आयी थी। मनुष्य जब, पैसे को ही जीवन की चरम सीमा समझने लगता है, तब उसे धर्म-अधर्म नहीं दिखाई देता। आज की भारी मँहगाई ने जो नित्य ही सुरसा के समान मुँह बाये खड़ी है और जिसकी विकट दाढ़ों से कौंचे जाने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि अब उसकी चर्चा के लिए भी उनके पास समय नहीं, जब बड़ों-बड़ों के नेम-कर्म को डिगा दिया, तब वह अधपढ़ा कृपाशंकर जो न सोचे, थोड़ा!

'रुपया आवे कहाँ से ?'—कृपाशंकर के सामने यह प्रश्न विकट रूप में उपस्थित था। जब-जब वह इस प्रश्न को हल करने बैठता तब तब अपने से उम्र में छोटी, किन्तु पद में बड़ी, गायत्री का स्मरण उसे हो आता। अनेक विचार उसके मन में ग्रस्त रहते। और उसने भी रामू के मकान के कई चक्कर काटे थे।

एक बार कृपाशंकर मकान में प्रवेश भी कर गया था, परन्तु ठीक इसी समय जब वह जाँच-पड़ताल करना चाहता था, रामू वहां आ धमका था, और तब कृपाशंकर को किसी प्रकार जान बचाकर उल्टे पांव भागना पड़ा था। रात्रि का वह समय था; गायत्री ऊपर अटारी पर थी। रामशंकर ने जाकर कहा "भाभी, किवाड़ न खुला छोड़ा करो। अभी-अभी कोई चोर नीचे घुसा ही था, कि मैं पहुँच गया। मैं कपड़े उतारने गया था। लालटैन जलाने को माचिस निकाली ही थी कि वह दबे पैरों मेरे पीछे से भागा। मैं उसके पीछे दौड़ा, पर वह निकल गया। आज ईश्वर ने बहुत बचाया।"

किन्तु हा, संसार कैसा मूर्ख है ! गायत्री ने ऊपर से तो आश्चर्य प्रकट किया और जाकर सब देखभाल की, परन्तु मन में कुछ तर्क-वितर्क किये बिना कुछ और ही अर्थ लगा बैठी। जब मनुष्य की यह धारणा हो जाती है कि अमुक व्यक्ति बुरा है, तब उसे उस व्यक्ति के सब कामों में बुराई ही देख पड़ती है। गायत्री सोचती—"हाय, जिसे मैं फूल समझती थी,

वही काँटा सिद्ध हुआ। कैसी बातें बना दीं। मेरा सतीत्व-धन लूटकर मेरा स्त्री-धन भी छीनना चाहता है।" इस विचार ने गायत्री के मस्तिष्क में जड़ जमा ली; सन्देह और अविश्वास ने उत्तरोत्तर उग्र रूप धारण किया।

हा मूर्खा गायत्री, तू क्या जाने, तेरा यह लुटेरा किसी दूसरी ही मिट्टी का बना है—उस मिट्टी का जिसका सब नहीं बनते। तेरा धन लूटकर लुटेरे को जितना दुःख है, उतनी वेदना अपना धन लुट जाने पर तुझे नहीं। पर तू क्यों समझने लगी ?"

भोला रामशंकर क्या समझता था कि भावज का विश्वास उसपर से उठ गया है। वह संध्या समय जब घर वापस होता, सारे मकान को भली भांति देख लेता, और रात्रि में भी नियमित रूप से एक-दो बार मकान को देख डालता। गायत्री इस सबको धोखाधड़ी समझती; उसकी आँखों पर अविश्वास का पर्दा जो छाया था! सचमुच एक-दो बार वह रामू के पीछे भी गयी थी, यह देखने के लिए कि रामू रात में उठकर करता क्या है।

---

*

[१७]

सुन्दरी गर्भवती है। घर के काम-काज के लिए किसी स्त्री की आवश्यकता है। कृपाशंकर ने सोचा, यदि इस समय किसी प्रकार भाभी को बुला लें, तो एक पन्थ दो काज हो। एक बार यहाँ आ भर जायँ, फिर तो उनका यहाँ से जाना सम्भव नहीं।

एक दिन अवसर पाकर कृपाशंकर रामू के मकान पर पहुँचा। आराम के साथ गायत्री से बातें करने का मौका मिला—यह सोचकर ही वहाँ गया था।

गायत्री बोली—"लाला तो हमें भूल ही गये।"

"भाभी, कैसी बातें करती हैं। आप ही तो वहाँ से चली आयी थीं; मैं कब आपसे हटा हूँ।"

"हाँ, न जाने मुझे उस वक्त क्या हुआ था। अब पछता रही हूँ।"

"क्यों, कैसे ?"

"अरे, रामू को मैं ऐसा नहीं समझती थी।"

"आखिर हुआ क्या ?"—रामू का नाम सुनकर कृपाशंकर सब बातें, जिनमें से कुछ उड़ती-उड़ती हुई उसके पासतक भी पहुँची थीं, जानने के लिए उतावला हो रहा था, लम्बी-चौड़ी भूमिका उसे पसन्द न थी।

"कहता है, जितनी जल्दी हो सके, यह मकान ख़ाली कर दो; किसी और ही मुहल्ले में रहेंगे, और मैं तुम-सबके पीछे यह मुहल्ला छोड़ना नहीं चाहता।"

"तो फिर क्या है? उसे जाने दीजिये, जहाँ वह चाहे। आप उस मकान में चलिये न! मैं आपसे कब अलग हूँ?"

"हाँ, लाला, तुम्हारे सिवाय मेरा बेठा ही कौन है? मैं कई बार सोच चुकी थी, पर जब यहाँ से निकल पाती तब तो?"

"खैर आप अभी चलिये।"

"आज आ जाने दो उसे शाम को। तब ही·····।"

"शाम-आम की क्या बात है? आप अभी चलिये। शाम को यों ही सिर फूटेगा।"

"झगड़े में क्या रखा है? आ जाने देते तो अच्छा था।"

"अच्छा-बुरा क्या? जो आप जानें सो करें।"

"मैं तो इसलिए कहती हूँ कि शाम को घर सँभाल देती।"

"सब सँभल जायगा! उसके पास रखा ही क्या है?"

"तो ताँगा ले आते।"

ताँगा आ गया। गायत्री कला और राजेश के साथ कृपाशंकर के मकान पर पहुँच गयी। एक गाड़ी में गायत्री का सारा सामान भर दिया गया। मकान की ताली रामू के एक पड़ोसी को दे दी गयी, और उससे कह दिया गया कि रामू जब आवे तो कह देना कि तुम्हारी इच्छा के अनुसार वे लोग इस मकान को खाली कर चले गये हैं।

कृपाशंकर अच्छी सायत में घर से चला था. उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। उसका हृदय अपनी सफलता पर खिल उठा था। हा मूर्खा गायत्री, तूने रामू को न समझा।

उधर जब रामशंकर दुकान से लौटा तब पड़ोसी से सारा हाल ज्ञात हुआ। उसे समझते देर न लगी कि यह सब उसी नीच की करतूत है। "परन्तु भाभी कैसी हो गयीं, जो कुछ कहे-सुने बिना ही, अन्तिम बार मिले बिना ही चली गयीं। ख़ैर, जैसी उनकी मर्ज़ी।" हृदय रो उठा। कुछ क्रोध, कुछ क्षोभ, कुछ विषाद हुआ। विवेक ने कहा—"न तुम मुझे भूल जाते और न यह दिन देखना होता। भाभी को दोष क्यों देते हो? दोष तो तुम्हारा है।"

पड़ोसी ने सब हाल जानना चाहा था, परन्तु रामशंकर ने "जो कुछ हुआ, ठीक हुआ" के अतिरिक्त कुछ न कहा। ताली लेकर मकान खोला, देखा, घर में भूत लोट रहे थे। इधर-उधर उसका जो भी सामान था बिखरा पड़ा था। घर की श्री जाती रही थी। आज सचमुच वह इस संसार में अकेला है।

"कोऊ काहू में मगन, कोऊ काहू में मगन हम वाही में मगन, जासो लागी है लगन" के अनुसार लाख चेष्टा करने पर भी वह गायत्री की मूर्त्ति को भुला न सका और चारपाई पर यों ही करवटें बदलते हुए वह गायत्री के जीवन की प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना को तन्मय होकर निहारता रहा।

*

[१८]

कुँवर साहब जान पर खेलकर शान्ति के उद्धार में समर्थ तो हुए, परन्तु तभी जब वह सुरेश के पाशविक अत्याचार की दो-एक बार शिकार हो चुकी थी। कुँवर साहब ने उसे अपने आश्रय में बड़े यत्नपूर्वक लाकर रखा, और वह उनकी पत्नी से भी हिलमिल गयी। स्त्री-जाति स्वभाव से सशंक और ईर्ष्यालु होती है। कुँवर साहब की पत्नी बहुत दिनों-तक शान्ति की ओर से सशंक रही, पर अपने ही मुहल्ले की इस पूर्व-परिचित तरुणी की करुण गाथा सुनकर और उसके साथ ही उसकी बदली हुई दिनचर्या पर विश्वास जम जाने पर वह अब उस ओर कुछ निश्चिन्त-सी हो गयी। शान्ति के लिए उसके हृदय की संचित करुणा उमड़ पड़ी, और वह उसे अपनी छोटी बहन के रूप में देखकर कृतकृत्य हुई। कुँवरानी की करुणा अब छाया की भाँति प्रहरी बनकर शान्ति को घेरे रहती, और इस मधुर वातावरण में शान्ति ने भी शान्ति का अनोखा अनुभव किया, किन्तु दुनिया में गरीबों को आराम नहीं मिला करता।

कुँवर साहब की जिस भावुकता ने उन विकट कठिनाइयों के होते हुए भी उस नरक-कुण्ड से शान्ति का उद्धार किया था, उसका शमन सहज में सम्भव न था। मन के भावोंको

इतने दिनों वे बड़े यत्न से दबाये रहे थे, और जिस शान्ति को वे अबतक कुमारी समझ रहे थे, उसकी कृतज्ञता को अपने प्रति प्रणय के रूप में परिपक्व देखने की वे प्रतीक्षा में थे। पत्नी के कारण यहाँ अपने ही घर में वे शान्ति से अधिक बातचीत का अवसर नहीं पाते थे, और यह प्रतिबन्ध उन्हें कभी-कभी बहुत अखरता था। शान्ति भी अब अपने इन जीजाजी के सामने विशेष नहीं रहती थी; घर के काम-काज में उसने अपने को भुला दिया था।

कुँवर साहब जब फिर एक बार घरसे उड़े-उड़े से रहने लगे, तब उसने कुछ तो अपनी जीजी की अनुमति देखकर और कुछ हृदय की किसी अनियंत्रित प्रेरणा से जीजाजी से मिलने का अवसर निकाल ही लिया। बेचारे ने स्पष्ट ही तो कह दिया कि उन्होंने उसका उद्धार केवल परमार्थ-बुद्धि से नहीं किया था; क्योंकि धर्म-कर्म को तो वे जीवन में बहुत पीछे छोड़ आये हैं। दोनों बहनों का जो अनुमान था वह सत्य था कि वे बाहर जाकर अपना दिल बहलाने लगे हैं, परन्तु उन्होंने बताया कि शान्ति यदि उन्हें अपनावे, तो वे भूलकर भी कभी उस मार्ग पर पैर न रखेंगे। भावावेग में वे कुछ ऐसे बह गये कि उन्होंने यह भी कह डाला कि उन्होंने शान्ति को पहले कहीं और रखा होता तो अच्छा था, क्योंकि तब उसका प्रेम जीतने में उन्हें बड़ी सुविधा होती।

शान्ति ने उन्हें बताया, "मैं आपके मित्र द्वारा कलुषित की

जा चुकी हूँ।" और वह चाहती थी कि उस नारकीय ज्वाला से निकलकर वह किसी की गृहिणी बनकर रहती, परन्तु अब इस स्थिति में भला कौन उस अभागिन को अंगीकार कर सकता है! कुँवर साहब की कृतज्ञता से वह दबी जा रही है, किन्तु अपने में उनके मन को उलझाकर वह अपनी जीजी के साथ विश्वासघात करने को तैयार नहीं—इससे तो यही अच्छा है कि वे उसे अथाह जीवन-सागर में पुनः कुछ ठोकर खाने के लिए स्वतंत्र छोड़ दें।

यह जानकर कि शान्ति के उद्धार में उनसे अवश्य ही विलम्ब हुआ है, कुँवर साहब के हृदय को एक धक्का लगा। उसके कौमार्य की तो उन्हें विशेष चिन्ता न थी—कदाचित् उन्हें सब प्रकार की सामाजिक सुविधा थी; शान्ति यदि चाहती तो वे उसके साथ नियमानुसार विवाह करके भी अपने को धन्य समझते। किन्तु जिस दुष्ट ने उस नवयुती का जीवन उजाड़ा, उस अपने मित्र को समझाने में वे लग गये कि वह उसके साथ ही विवाह-सूत्र में बँधकर अपनी जीवन-गति को सुधार ले। किन्तु सुरेश, जिसे अपने तेज पर गर्व था उस वार-वनिता के साथ विवाहित जीवन बिताने के लिए सहमत भला कब हो सकता था, उल्टे उसने व्यंग्य-वाणों की वर्षा की।

*

[१६]

रामशंकर अब घर से बहुत कम निकलता ; सन्ध्या समय वायु-सेवनादि को भी न जाता, और कभी-कभी टहलने जाता भी तो सदैव कुछ न कुछ सोचा करता। मस्तिष्क अब क्षोभ, विषाद, ईर्ष्या, क्रोध और पश्चात्ताप का रंगस्थल बन गया था—उसकी एकमात्र चिन्ता थी गायत्री।

वह गायत्री को दोष नहीं दे सकता। वह धिक्कार रहा है अपने को। हाय, उस समय यदि उसका आत्मबल नष्ट न हुआ होता, तो आज यह दिन क्यों देखना पड़ता! आज वह संसार में अकेला है—उसका अपना कोई नहीं। उसने अपने हाथों अपने जीवन को नष्ट कर दिया है और एक अभागिन विधवा का सर्वनाश किया है। उसे आत्मग्लानि हो रही थी। एक-दो बार उसने आत्म-हत्या करने का भी विचार किया था, किन्तु न जाने वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने उसे ऐसा करने से रोक दिया था।

जीवन-मोह तो नहीं कहा जा सकता, कदाचित् पाप-दण्ड भोगने की इच्छा ही वह थी। आत्मघात से वह पाप का प्रायश्चित्त भी तो नहीं कर सकता था। क्रान्ति और पश्चात्ताप की भयंकर ज्वाला में जल-जलकर मर जाने में ही वह अपने पाप का प्रायश्चित्त मानता था। उसने संसार से अब उतना

ही सम्बन्ध रख छोड़ा था जितना पेट भरने के लिए आवश्यक था। संसार की किसी वस्तु में अब उसके लिए कोई आकर्षण नहीं रह गया था। मस्तिष्क अशान्ति का केन्द्र हो रहा था। ऐसी स्थिति में उसे शान्ति कैसे मिलती ?

दुकान जाता और वहाँ से लौटकर सीधे घर आता। उसे अब किसी से कुछ प्रयोजन न था, लोगों से भी वह बहुत कम बातचीत किया करता। वे उसका पीला मुरझाया हुआ चेहरा देखते और आश्चर्य प्रकट करते। उससे कुछ पूछना चाहते थे, किन्तु रामशंकर उनके उन प्रश्नों को यों ही एक रूखी-सी मुस्कुराहट के साथ टाल देता। वह किसीसे कुछ कहता भी तो क्या ? कोई उसकी वेदना बाँट तो नहीं लेता, उल्टे जगहँसाई होती ?

कभी-कभी काम करते समय उसका चित्त बड़ा घबराता। काम सब-कुछ करना होता, किन्तु ध्यान कहीं और ही लगा हुआ होता। कई बार उससे भारी भूलें होने से बचीं। साथ के मुनीम उसमें किसी भयंकर संक्रामक रोग के लक्षण पाते, और उसे मंत्रणा देते कि वह किसी योग्य और अनुभवी डाक्टर से अपनी बीमारी का इलाज करावे। वे बेचारे क्या जानते थे कि उसका रोग साधारण रोग नहीं। यह वह बीमारी नहीं, जो सांसारिक डाक्टरों से अच्छी हो सके। यदि इसका कोई वैद्य है तो वही सर्वशक्तिमान और कोई ओषधि है तो गायत्री। कोई कह सकता है कि गायत्री के

स्थान पर कोई सावित्री भी तो रामशंकर के नीरस जीवन में रस का उद्रेक कर सकती है। परन्तु रोग की इस विषम स्थिति में तो गायत्री ही कुछ उपचार कर सकती थी, अन्य कौन उसे कर्तव्य का उपदेश देने में समर्थ हो सकती थी।

रामशंकर ने अपनी आवश्यकताओं को बहुत कम कर दिया था। जो वेतन वह पाता था उसमें से बहुत थोड़ा लेकर वह महीना काटता, शेष कुछ सरस उपन्यासों के लिए स्थानीय पुस्तकालय को भेंट करता। साधारण वेतन पर एक नौकर रख लिया था, जो बाज़ार से सौदा ला देता; और ऐसी ही सस्ती एक कहारी भी मिल गयी थी, जो घर के दो-एक धन्धे कर जाती। महीने की पहली तारीख को सांझ के समय केवल एक दिन लोग उसे बाज़ार में दाल-चावल, घी-नमक खरीदते देख सकते थे। खाना बनाना उसे आता न था, और किसी मिश्रानी के हाथ का अच्छा भी नहीं लगता था। दोनों वक्त खिचड़ी से निर्वाह होने लगा।

वेदना अब उसकी चिरसंगिनी थी, और अब उसकी ही संगति में उसे सुख और सन्तोष मिलता। रामशंकर के लिए अशान्ति ही अशान्ति थी। जब मन बहुत ही घबराता तब मकान की छत पर टहलने लगता, नहीं तो वह भला, और उसकी टूटी खाट भला—इधर-उधर उपन्यास-ग्रन्थ बिखरे पड़े होते। अपने इन्हीं प्यारे उपन्यासों से वह जी बहलाया करता। उपन्यास-प्रेम ने अस्वस्थता के साथ मिलकर उसे

वास्तव में बहुत भावुक बना दिया था। जब वह अपने ऐसे किसी हतभाग्य प्रेमी के सम्बन्ध में पढ़ता, तो घंटों आँसू बहाया करता। कभी प्रेमिका के निष्ठुर व्यवहार पर क्रोध भी प्रकट किया करता। किन्तु फिर प्रेमी पर ही कठोरता का आरोप करके छुट्टी पाता।

इस प्रकार सदैव मानसिक भूल-भुलैयों में घिरे रहने और खाट तोड़ने का उसके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, किन्तु वह तो सब-कुछ समझकर ही महानाश का आह्वान कर रहा था—"जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ, महानाश-सी मेरी आग!"

---

*

*

[२०]

सभी मनुष्य एक से नहीं होते, गायत्री की प्रकृति इससे भिन्न थी। स्वभाव से ही वह हँसोड़ थी, सीधी-सादी बात पर दाँत निकालकर खिलखिला उठना उसके लिए साधारण बात थी। वह घोर निराशा के समय में भी प्रायः हँसती-खेलती देखी गयी थी; पतिशोक जैसे गहन दुःख को भी उसने हँसते-खेलते झेल लिया था। बात यह न थी कि उसे पति की मृत्यु का दुख नहीं हुआ था। उसे दुख उतना ही हुआ था, जितना किसी पति-परायण को होता है।

तब इन दिनों यदि वह ही-ही ठी-ठी करते देखी गयी थी, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं थी। वह सोचती, जो हो चुका वह तो अब किसी प्रकार मिट नहीं सकता, आगे के लिए उसे अपने धर्म पर आचरण करना चाहिये। सच बात तो यह थी कि रामशंकर को पूर्ण रूप से दोषी ठहराकर उसने अपने को समझा लिया था। यह बात सच है कि अपनी बुराई नहीं दिखाई देती, परन्तु अपनी स्वयं बुराई ढूँढ़ निकालने की भी तो उसने चेष्टा नहीं की थी, अन्यथा उसे कुछ-न-कुछ सफलता अवश्य मिली होती, और तब रामशंकर के प्रति मनोमालिन्य ने उसके हृदय में इतना उग्र रूप न धारण किया होता। मनुष्य में दुर्बलताएँ होती हैं, किन्तु वह अपने में

दुबलताओं के होते हुए भी दूसरों की दुर्बलताओं को क्षमा नहीं कर सकता—कदाचित् इसलिए कि उसे अपनी दुर्बलताओं का ज्ञान नहीं।

गायत्री आप बीती बातों को भुलाने का लाख प्रयत्न करती, परन्तु जब कभी रामशंकर की मूर्ति उसकी आँखों के आगे आ झूलती, वह बहुत व्यथित जान पड़ती, इच्छा होती कि उसके पास तक उड़ जाय किन्तु दूसरे ही क्षण वही पूर्ववत् ईर्ष्या उसे आ घेरती।

कभी-कभी उसे घर में कृपाशंकर और देवरानी का स्वार्थ देखकर बड़ा क्षोभ होता। यहाँ जब से वह आयी थी पैसे पर चक्की चल रही थी। कृपाशंकर जो कुछ कमाता वह आप उड़ा देता। ऊपर से जब कभी किसी काम के लिए आवश्यकता होती, उसे ही देना होता। यह त्योहार करो, वह न्योता करो—आज मकान वाले का तकाजा है, कल कहार अड़ा है, परसों घीवाला खड़ा है—बस इसीमें पैसा खर्च हो रहा था। गायत्री मन-ही-मन झुँझला कर रह जाती; कर भी क्या सकती थी? जानबूझकर काठ में पैर दिया ही था या यों कहा जाय कि भेड़ जहाँ जायगी वहीं मुड़ेगी।

उस दिन की बात है। कृपाशंकर भाभी के पास आया; कुछ देर इधर-उधर की गप्पें मारीं। बाद में मतलब की बात पर आया। बोला—"अब जाड़ा आ गया है।"

गायत्री ने कहा—"हाँ, आ तो गया है।"

"बच्चों के लिए कपड़े बनवाने हैं; मेरे पास भी लिहाफ़ नहीं है। आजकल बाज़ार में कम्बल सस्ते दामों पर मिल रहे हैं।

"पर पैसा हो तभी यह अच्छा लगता है।"

"हाँ, सो तो मैं जानता हूँ। मुझे चालीस रुपये चाहिये।"

"चालीस !"

"हाँ, सभी के तो बनेंगे—जाड़े के कपड़े हैं, और यह कम से कम है।"

"अभी तो मेरे पास रुपये नहीं। अभी श्राद्ध में इतने लग गये।"

"चलो, बातें न बनाओ। सीधे-सीधे दे दो, नहीं तो मुझसे जैसे भी लेते बनेगा, ले लूँगा।"

"आज तुम भाँग तो नहीं खा आय।"

"हाँ, भाँग ही खा आया हूँ, पर रुपये तुम्हें देने ही होंगे।"

गायत्री सन्न रह गयी—कुछ भीत भी हुई। बला टालते हुए बोली—"देखा जायगा।"

कृपाशंकर का उत्तर था—"देखा-वेखा नहीं जायगा। मुझे चालीस से एक पाई कम नहीं चाहिये।"

गायत्री ने कहा—"ठीक है।"

हाँ कहता हुआ कृपाशंकर भी चल दिया।

गायत्री अब और अधिक मूड़ी नहीं जा सकती थी। उसने समझ लिया, उसके लिए अब यहाँ भी जगह नहीं।

---

*

[२१]

बहुत भटक चुकने पर व्यक्ति जिस प्रकार विश्राम के लिए उत्सुक हो उठता है, उसी प्रकार उस विशाल भवन की शोभा-सौन्दर्य के अकेले उपभोग से उकताकर अब सुरेशकुमार को अपना सूनापन अखरने लगा। रायबहादुर की गाढ़ी कमाई से अत्यन्त निर्दयतापूर्वक बहुत-कुछ गुलछर्रे उड़ाये जा चुके थे, किन्तु अब भी उसके पास इतना था जिसमें वह किसी भोली बाला के जीवन को मोल ले सके। एक विधवा ब्राह्मणी, जो किसी प्रकार कन्या के ऋण से उऋण होना चाहती थी, सुरेश से ही पैसे लेकर उसे दहेज में देने को उद्यत हो गयी, और वह यौवन के मध्याह्न में पीले पिचके गालों को लेकर विवाह-मण्डप के नीचे से उठनेवाली होम की लहरियों के साथ अखण्ड दीर्घ जीवन का आशीर्वाद लेकर लौटा।

सुरेश को मालती में एक अच्छे अफसर के दर्शन हुए। घर में आते ही उसने अपने पति के परिवार का पूर्णतः प्रामाणिक इतिहास जान लिया, और घर का सब हिसाब-किताब क्रमशः अपने हाथ में ले लिया। मालती ने आकर देखा कि सुरेश ने बाहरी आडम्बर बहुत बना रखा है, किन्तु वह सब भी कुछ ही समय में ढह जाने को था। उसने

जहाँ झूठी तड़क-भड़क को कम किया, वहाँ साहकारों के कर्ज को और उन सब कर्ज पर जुड़ने वाले भारी ब्याज को भी किसी न किसी प्रकार बिलकुल ही कम कर डालने का संकल्प किया। आय के साधन पहले-से ही बहुत सीमित होने के कारण उसने उस विशाल भवन को बेच देने में ही लाभ देखा। मकान के बिक जाने पर कर्ज और ब्याज तो चुका दिये गये ही, अच्छी-सी रकम उसके पास बच रही जिसे यत्न-पूर्वक सहेज रखने में भी उसने दूरदर्शिता का परिचय दिया।

अब जब वे लोग किराये के एक छोटे-से मकान में चले आये, मालती ने अर्धांगिनी के अधिकार से भी कुछ अधिक जताते हुए सुरेश से कहा—"देखो जी, इस तरह काम नहीं चलने का"।

"तो कैसे चलेगा ?"

"तुम्हें कुछ काम देखना चाहिये। कितनी ही सम्पत्ति क्यों न हो, बैठे बिठाये कुआं भी खाली हो जाता है। फिर दर्द तो अपने पैसे का ही होता है। जब पसीना बहाकर चार पैसे कमा लाओगे तभी तुम उन्हें ठिकाने से खर्च करना भी सीखोगे। मैं तुम्हारी सब कहानियाँ जान चुकी हूँ, और अब ये रंगीनियाँ तुम्हें छोड़ देनी होंगी। दुकानें जो किराये पर दे रखी हैं, उनके किरायेनामे सब बदलवाकर मेरे नाम करो—किराये पर तुम्हारा कुछ भी अधिकार न होगा"।

"अरी, तू तो बड़ा हुक्म चला रही है। मेरा अधिकार न होगा—तेरा होगा!'

"हाँ, हुक्म चलाने के लिए ही तो आयी हूँ। जब आधी उम्र यों ही खो दी, तब तुम्हें अक्ल सिखाने के लिए ही तो मैं यहाँ आयी हूँ।"

"चलो, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न करो। तुम अपना काम देखो; तुम्हें बाहर के कामों से मतलब?"

"हाँ, मतल क्यों नहीं। इस धोखे में मत रहना। जब ऐसी ही मनमानी तुम्हें करनी थी, तब मुझे ब्याह कर क्यों लाये? याद रखो, अब तुम्हारी आवारा-गर्दी नहीं चलेगी। कुशल इसी में हैं कि अपने लिए कोई काम जल्दी खोज लो; नहीं, मैं एक पैसा नहीं दूँगी।"

"अरे फिर वही बकबक! नहीं दूँगी! नहीं दूँगी! तो क्या तेरे बाप का है?"

"देखो बाप-दादों तक पहुँचने की जरूरत नहीं। मेरे बाप का नहीं, तो यह सब तुम्हारे बाप का भी नहीं।"

सुरेश ने एक चाँटा उठाया, पर मालती ने तमक कर अपने को बचाते हुए कहा—"किसी और के धोखे में मत रहना। मैं ऐसी स्त्री नहीं हूँ, जो तुम्हारे अत्याचारों को चुपचाप सह लूँगी। एक कहोगे, तो दस सुनोगे। मैं फिर भी कहती कि अगर तुमने मेरे कहे के अनुसार अपने

रंग-ढंग न सुधारे, तो मैं भी अच्छी तरह तुम्हारी किरकरी कराने में स्वतंत्र रहूँगी।"

कहना नहीं होगा, इस अन्तिम चेतावनी का सुरेश पर काफी प्रभाव पड़ा, और उसे कुछ काम-काज खोजने की धुन उस दिन से ही सवार हो गयी। मालती ने साया ही कुछ ऐसा डाला था।

---

*

*

[२२]

रामशंकर को 'एपेन्डीसाइटिस' जैसा भयंकर रोग हो गया। यह रोग कैसे और कब हुआ, और कब इतना बढ़ गया, इसका उसे कुछ पता न चला। अज्ञात रूप से यह रोग बढ़ चुका था।

वह उद्विग्न मन से छत पर टहल रहा था। अनेक विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे ; मुह पर कभी हर्ष और कभी विषाद की रेखाएँ खिंच जातीं। इसी समय जब वह विचारों में निमग्न था, कला को सामने देखकर उसकी विचार-तन्द्रा टूटी। आज इतने दिनों के बाद उसने कला को देखा है। अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसका सिर थपथपाते हुए पूछा—"कला रानी, अच्छी तरह से हो ? तुम तो कभी-कभी आ जाया करो।"

कला बोली—"अम्मा ने कहा है, आज ही आकर हमें लिवा ले जाओ, और उनके सुरेश भैया के पास अनुराधापुर पहुँचा दो"।

रामू ने पूछा—"कला, बात क्या हुई है, जो भाभी जाने की इतनी जल्दी कर रही हैं ? क्या किसी से कुछ झगड़ा तो नहीं हो गया ?"

कला ने कहा—"क्या जानें, बड़े चाचा ने चालीस रुपये माँगे थे, अम्मा ने नाहीं कर दी है।"

रमाशंकर ने कहा—"ठीक है, तुम जाकर उन्हें अकेले में कह देना कि चाचा दोपहर को आयंगे, और तभी ले जायंगे।"

कला को बिदा कर रामशकर इस विषय में मीमांसा करने लगा, परन्तु इस समय वह अपनी ही चिन्ताओं में पड़ा था। वह समझ नहीं पाता था कि कबसे इस रोग ने उसपर अपना अधिकार जमा लिया। यही सोचता-विचारता डाक्टर के पास पहुँचा; डाक्टर ने एक इंजेक्शन और कुछ साधारण-सी दवा लिख दी।

पाप मनुष्य को भीरु बना देता है। उसके मस्तिष्क में यह विचार भी आया कि यह मेरे पाप की मुझको सजा मिली है, और है भी उचित दण्ड। तब इस दण्ड को सहर्ष झेलना चाहिये; क्यों व्यर्थ दवा-दारू के झमेले में पड़ूं। घुल-घुल-कर मर जाने में ही पाप का प्रायश्चित्त है, और प्रायश्चित्त के बिना.....।

पाप और प्रायश्चित्त का विचार आते ही उसे अपने तात्कालिक कर्तव्य का स्मरण हो आया। आज मेरी परीक्षा का दिन है। आज जाकर उस देवी से क्षमा माँगूगा।

उधर जब रामशंकर कृपा के मकान पर पहुँचा, वह आवारागिरी में कहीं बाहर गया था। ताँगा खड़ा कर रामू घबड़ाता हुआ अन्दर पहुँचा। उसकी दुर्बल आकृति उसका

मुरझाया हुआ चेहरा, उसके बड़े-बड़े नेत्र, जिनमें लाली छिटक रही थी, देखकर सुन्दरी और गायत्री दोनों ठिठकी खड़ी रहीं।

रामू ने कहा—"चलो, भाभी सामान लाओ।" तुरन्त सामान ताँगे में डालकर गायत्री, कला और राजेश के साथ रामशंकर के मकान आ गयी। सुन्दरी को साहस न हुआ कि उसे टोके।

× × ×

गायत्री आयी। मकान की कुव्यवस्था देखकर उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। सबसे अधिक दुःख उसे रामू की क्षीण आकृति देखकर हुआ। पूछ बैठी—"रामू! ....मेरे रामू! यह क्या हुआ?"

रामू का उत्तर था—"क्या बताऊँ, यह सब मेरे कर्मों का फल है। भाभी मुझे क्षमा करो। मनुष्य में दुर्बलताएँ होती हैं, उन्हीं दुर्बलताओं के वशीभूत होकर मैं तुम्हारे जीवन को नष्ट कर बैठा, और किया अपना सर्वनाश। अब इस घर को सँभालो। क्या इस अभागे को क्षमा न करोगी?"—कहते-कहते रामू का कण्ठ रुद्ध हो गया, आँखों-से टपटप आँसू बरसने लगे।

गायत्री की आँखों में भी आँसू छलछला रहे थे। वाणी उसका आशय प्रकट कर सकने में असमर्थ थी। जब उसे अपनी दशा का चेत हुआ, बोली—"तुम्हारा क्या दोष! जो ईश्वर करता है वही होता है। इसके लिए कष्ट मत पाओ।

मुझे कुछ दिनों के लिए अनुराधापुर पहुँचा दो। बाद को बुला लेना ; मैं यहीं रहूँगी। मैं पापिनी हूँ, मैंने तुम्हारे सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या किस-किस से कहा है। मुझे क्षमा करना लाला, अभी मेरा यहाँ रहना ठीक न होगा। कुछ दिन के लिए मुझे वहीं पहुँचा आओ।"

रामशंकर अप्रतिभ था। उसके हृदय से निराशा के ये उद्‌गार निकल पड़े—"खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा ; पर तुम रामू को अब जीता न पाओगी।"

गायत्री ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—"लाला, तुम क्यों इतने अधीर हो रहे हो ? मैं दो-तीन महीने में ही आ जाऊँगी। क्या विश्वास नहीं ?"

रामू का उत्तर था—"विश्वास और अविश्वास का क्या प्रश्न ?" कुछ देर रुककर कहा—"तो कब ?"

गायत्री ने कहा—"आज ही शाम की गाड़ी से।"

रामू ने कहा—"यही सही"—और हृदय पर पत्थर रखकर वहाँ से अलग एक ओर चल दिया। एकान्त में वह कबतक रोया, विदित नहीं।

---

*

*

[२३]

शान्ति कुछ दिनों तक बहुत उलझन में पड़ी रही—वह कहाँ जाय, क्या करे। अपने निर्मल हास्य से वातावरण में सौरभ बिखेरनेवाली वह शान्ति अब भविष्य की चिन्ताओं में निमग्न देखी गयी—वह सोचती, किसी कन्यापाठशाला अथवा विधवाश्रम में वह थोड़ा-सा आश्रय पा सकती! उसकी गम्भीरता उसकी जीजी से छिपी न रह सकी, और उसने उन्हें बताया कि वह अब शीघ्र ही उनकी छत्र-छाया से किसी दूसरे स्थान को प्रयाण कर जाने के लिए आकुल है।

शान्ति की जीजी अपनी इस प्रेममयी परिचारिका को पाकर उसे सहज में छोड़ने के लिए प्रस्तुत न थी—"भला मुझ पर ऐसी नाराजगी क्यों, और फिर तुम जाओगी भी कहाँ?"

"जीजी मेरी, तुमसे नाराजगी की क्या बात है? तुम्हारे उपकारों को तो मैं सात जन्मों में भी न भूल सकूँगी। यह अवश्य ही उलझन है कि यह अभागा शरीर लेकर कहाँ जाऊँ। किन्तु कहीं न कहीं जाना ही होगा। यहाँ रहकर तो भय है कि किसी दिन मुझसे कुछ ऐसा अपराध न हो जाय जिसको मैं कभी किसी प्रकार धो न सकूँ। और जो अपनी स्नेहमयी जीजी के प्रति विश्वासघात के समान हो।

"अरी पगली, यह बात है—मैं तो समझी बैठी थी कि

तुम्हारा मन कहीं और ही उलझा हुआ है। बहन, मैं तो आज स्वयं तुमसे एक भीख माँगने आयी हूँ। बोलो, मुझे दोगी ?"

"भीख ! जीजी, मैं पथ की भिखारिन, जो अपने दोनों जन्मों के पापों के बोझ से आप ही दबी जा रही हूँ, आपको क्या दे सकूँगी। क्यों आप मेरा उपहास कर रही हैं ?"

"बहन, क्या तुम्हें विश्वास है, मैं तेरा उपहास करूँगी। सच ही तुम मुझे बहुत-कुछ दे सकती हो।"

"प्राण देकर भी यदि जीजी तुम्हारी कुछ सेवा कर पाऊं" कहते हुए शान्ति के गोरे गुलाबी गालों पर करुणा के दो तुहिन-कण नेत्रों की नवीन सीपियों से झर आये।

शान्ति की पीठ थपथपाते हुए उसकी जीजी ने कहा—"सचमुच बहन, मुझे तुमसे ऐसी ही आशाएँ हैं। लो सुनो, कल उन्होंने अपना हृदय खोलकर मेरे सामने रख दिया। उन्होंने मुझे बताया कि किस प्रकार वे पिछले दिनों तुम्हारे लिए चिन्तित रहे हैं। तुमसे कुछ विवशता की बात जानकर उन्होंने अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर भी तुम्हारे लिए सुरेश-कुमार से बातें कीं, किन्तु वह दुष्ट इन भावों की भला क्या कद्र करने लगा था !"

सुरेशकुमार का नाम सुनकर क्षुण भर के लिए शान्ति अप्रतिभ हो गयी। बीच में ही टोककर बोली—"मुझ अभागिन के लिए उन्होंने उस नीच से याचना की—क्यों भला ? यदि मैं जान पाती..."

कुँवरानी जी ने कहा—"खैर, अब इन सब के लिए दुःख मत करो। बहन, जो हो चुका वह तो किसी प्रकार कभी मिट नहीं सकता। परन्तु मैंने तुम्हें सुखी देखने के लिए एक मार्ग निश्चित किया है।"

"जीजी, तुमने ही निश्चित किया है या जीजा जी का सुझाव है।"

"शान्ति, तुम्हारी ही शपथ है। उनका ऐसा कोई सुझाव नहीं—उन्होंने तो अपना सब पाप—दोष मेरे सामने खोलकर रख दिया। यह प्रस्ताव तो मेरा अपना है, पर मैं समझती हूँ कि उससे उन्हें जितना सुख होगा उतना ही भारी हर्ष मुझे होगा, और मैं समझती हूँ, तुम्हें भी कम आनन्द न होगा।"

"बस अब लम्बी-चौड़ी भूमिका या पहेली छोड़कर अपना प्रस्ताव तो सुनाओ। मेरी अपनी प्रसन्नता की कोई बात नहीं, तुम्हें और जीजा जी को यदि सच्चा सुख मिलता है, तो मुझे सब कुछ स्वीकार है।"

"हाँ, तो मेरी विनय है कि तुम उनसे विधिपूर्वक विवाह-सम्बन्ध में बँधकर सचमुच मेरी छोटी बहन बनकर रहो।"

"जीजी, यह मैं क्या सुन रही हूँ! क्या तुमने मेरी चेष्टाओं, मेरे व्यवहार में कोई ऐसी बात देखी जो मेरा उपहास कर रही हो? मैं तो आप ही जाने की उधेड़बुन में थी।"

"नहीं, जो कह रही हूँ, सच ही कह रही हूँ, और अब

अपनी इस उधेड़बुन को तुम्हें छोड़नी होगी। तुम जा न सकोगी। यह बात स्वप्न में भी नहीं कि मैंने तुम्हारी कोई खोट देखी है, जो इस प्रकार कह रही हूँ। उन्होंने भी मुझसे नहीं कहा, परन्तु उनकी प्रसन्नता के लिए और उनका मन घर में ही रमा रखने के लिए मुझे यह सहर्ष स्वीकार है।"

"तुम कितनी उदार हो, मेरी जीजी!"

———

*

[२४]

मालती ने अपना जो रोब जमाया उसने सुरेश के ऊपर सचमुच कुछ काम किया, परन्तु आदतें तनिक कठिनाई से ही बदली जा सकती हैं। रुपये पैसे तो मालती ने अपने हाथ में कर ही लिये ; जमीन-जायदाद को भी अपने नाम से करा लिया। अब सुरेश बाबू बड़ी मिन्नतों के बाद महीने में कुछ रुपये भर ही ले पाते। सदा के आलसी सुरेश से कोई कठिन काम तो भला होने से रहा था। जब कर्ज लेनेतक के भी सब साधन बन्द हो गये, तब झख मारकर दो-एक जगह ट्यूशन करने में मन बहलाना पड़ा। किन्तु इतने पर भी वे कभी-कभी अपने अड्डों पर हो ही आते।

सुरेश और मालती के उस छोटे-से नीड़ में दाल-भात में मूसलचन्द की भाँति गायत्री का प्रवेश दोनों को ही कुछ कम नहीं अखरा था। किन्तु भाई के लिए उसकी उपेक्षित बहन की याद उमड़ी थी, और वह अपने घर में अपना अधिकार समझकर ही बिना बुलाये आ पहुँची थी, किन्तु उसकी बहुत सी भूलों में एक यह भूल भी अंकित हो गयी।

स्त्री की जाति सदैव परतंत्र है। पिता, पति या पुत्र के नियंत्रण में तो उसे रहना ही पड़ता है। यदि वह स्वीकार कर ले तो उसके जीवन के तीन 'पनों' में और भी बहुत से

नियंत्रण हैं। मैके में पहुँचकर वह अपने वचन का निर्वाह न कर सकी। बात यह थी कि सुरेश के पास कृपाशंकर का जो पत्र पहुँचा था, उस पत्र ने भाई के हृदय में बहन के चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न कर दिया था। उसे स्वय पैसे का अभाव इन दिनों बहुत अखर रहा था, और इसलिए उसने कला के सयानेपन की चर्चा के साथ एक पासा और भी फेंकने का विचार किया। गायत्री का कुछ रुपया रामशंकर ने बैंक में जमा कर रखा था, और अब उनके निकालने की अवधि भी निकट आ पहुँची थीं, परन्तु अबतक अपने नाम के वे सब कागज-पत्र गायत्री ने रामशंकर के पास ही छोड़ रखे थे।

जब सुरेश ने दबाव डाला तब एक पत्र उसने राजेश की ओर से भेजवा दिया। रामू को भी इस विषय में कुछ स्मरण ही न रहा था, अन्यथा वे कागज़-पत्र उसके विशेष प्रयोजन के न थे। पत्र भेजा गया, परन्तु गायत्री को बड़ा क्षोभ था। उसे विश्वास था कि वे सब कागज-पत्र आयंगे। वह सोचा करती थी—'न-जाने रामू की क्या दशा होगी। वह क्या सोचता होगा कि भाभी का हृदय उसकी ओर से अब भी साफ नहीं हुआ। हाय. मैंने कैसी भूल की; यहाँ आकर कैद हो गयी। पत्र भी नहीं भेज सकती। रामू ने भी कोई पत्र नहीं भेजा। वह भेजे क्यों? एक भेजा था उसका उत्तर जो न दे सकी।'

अपने लिए यथेष्ट स्वच्छन्दता, गायत्री के लिए कठोर अनुशासन और सुरेश के लिए निरन्तर उदासीनता मालती का अपना कार्यक्रम था। उस दिन वह अकारण गायत्री से उलझ पड़ी—"जब सब कुछ लुटा आयी, तब तुम्हें अपने भाई की याद आयी।"

"भाभी, तुम्हें मैं इतनी बुरी क्यों लगती हूँ? संकट के समय ही तो अपने लोग याद आते हैं? आयी हूँ तो कहीं गैर के घर तो नहीं आयी हूँ—अपने ही भैया-भावज की शरण में आयी हूँ!"

"हाँ, जब लड़की सयानी होने को आयी, तब तो तुम्हें भैया-भावज की शरण की सुझी।"

"मैं भैया भावज से यह कब कहती हूँ कि वे लड़की के लिए कुछ लगायें—उसके लायक उसके बाप ने बहुत छोड़ा है; फिर कोई भी खड़ा होकर उसके हाथ पीले करा दे।"

देरतक यह चखचख चलती रही; तभी किसी ने आकर किनारी बाजार के किसी कोठे पर सुरेश के कत्ल कर दिये जाने का दुःसंवाद आ सुनाया। गायत्री स्तब्ध रह गयी, और मालती ने रंज किया तो केवल इतना कि वह गायत्री पर पिल पड़ी—"अपना पूरा डालकर अब यहाँ आग लगाने आयी है।" उसका सारा रोना-धोना गायत्री को अभागिन, कुलच्छिनी बतानेतकही सीमित था। किन्तु कुछ दिन तो इन सबके बीच में रहना भी आवश्यक हो गया था।

*

[२५]

आज एक मास से रामशंकर रोग-शय्या पर है। ज्वर की ज्वलंत वेदना से उसका शरीर जला जा रहा है। खाट पर से उठने-बैठने में बड़ा कष्ट होता है। सेवा शुश्रूशा करने-वाला भी कोई नहीं। इसी बीमारी की दशा में राजेश का पत्र मिला। उत्तर में ज्यों-त्यों टूटे-फूटे अक्षरों में लिख भेजा—"मैं इधर कुछ दिनों से विषम ज्वर से पीड़ित हूँ; उठ-बैठ भी नहीं सकता। मुझे याद भी नहीं है कि मैंने बैंक के तुम्हारे कागज-पत्र कहाँ रखे हैं। दो-एक दिन सब्र करो। किसी पड़ोसी से ढूँढ़ निकलवाऊँगा। पर कौन जानता है, मैं बच भी सकूँगा या नहीं। इन्हीं दो दिनों में चल दूँ, तो अचरज क्या? तब तुम आकर स्वयं अपने कागज-पत्र ले जाना, परन्तु तुम्हारे कागज तुमको लौटाये बिना मैं शान्ति-पूर्वक न मर सकूँगा।"

गायत्री ने पत्र पढ़ा और कई बार पढ़ा—"मेरा रामू वहाँ मृत्यु की घड़ियों का आवाहन कर रहा है और मैं यहाँ हूँ! 'पर कौन जानता है, मैं बच भी सकूँगा या नहीं।" इन्हीं दो दिनों में चल दूँ, तो अचरज क्या?'—हाय, कैसी निराशा, कैसी व्यथा के ये उद्गार हैं। परन्तु तुम्हारे कागज तुमको लौटाये बिना मैं शान्तिपूर्वक मर न सकूँगा। इस घर को

सभालो...मुझे सँभालो'—आज भी वे सारे शब्द हृदय में उथल-पुथल मचा रहे हैं। आज अज्ञान का पर्दा हट गया है, मैं उस सुन्दर मूर्ति के अपने हृदय में दर्शन कर रही हूँ। एक बार, केवल एक बार मैं उस आत्मा का साक्षात् करना चाहती हूँ। आकर अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना करूँगी। मैंने अपने पति और देवर दोनों के साथ ऐसा अनाचार, ऐसा असद् व्यवहार किया है, उसी का यह दण्ड है जो आज मेरा जीवन अशान्तिपूर्ण हो रहा है।

गायत्री ने अपना विचार भावज से कहा। भावज ने उत्तर दिया—'कोई मरता है तो मरा करे। ऐसे अधम की सूरत नहीं देखनी चाहिये।"

गायत्री ने कहा—"नहीं भौजी, मुझे जाने दो। मैं जाऊँगी और रुकूँगी नहीं। मेरे हृदय की यही प्रेरणा है।"

भावज ने कहा—"जाती ही हो, जाओ। फिर पूछने क्यों आयी? मैं जान गयी, तुम एक जगह बँधकर नहीं रह सकती। किन्तु फिर तुम्हारे लिए मेरे घर में जगह नहीं, यह याद रखना।"

गायत्री का मन तो पहले ही बहुत छटपटा रहा था। उसी समय सब सामान बाँधकर अकेली ही कला और राजेश को लेकर डाकगाड़ी से चल दी।

मकान में प्रवेश करते ही आँसुओं की झड़ी लग गयी। सभी चीजों पर बेतरह धूल जम गयी थी; दीवारों पर मकड़ी

के जाले लटक रहे थे। भीतर पहुँची; तो देखा रामू एक टूटी-सी खाट पर पड़ा है—बेहोशी में। खाट के नीचे दूध का अधपिया कटोरा रखा है। गायत्री का हृदय उमड़ पड़ा। रोना चाहती थी पर रो न सकता थी। कला और राजेश भी कुछ घबड़ाये हुए जान पड़े। मक्खियाँ बुरी तरह भिनक रही थीं। कला ने पास से एक टूटा सा पंखा उठाकर झलना शुरू कर दिया। गायत्री की आँखों में आँसू छलछला रहे थे। रामू अब केवल ढाँचा रह गया था—महीनों का रोगी जान पड़ता था। नाड़ी देखी, ज्वर बहुत काफी चढ़ा हुआ था।

थोड़ा-सा पानी लेकर आँखों से लगाया, रामू ने आँखें खोलीं, और अस्फुट स्वर में 'हे ईश्वर' कहते हुए करवट बदली। डाक्टर ने आज ही जो इंजेक्शन दिया था, शायद उसके कारण अथवा रोग के फोड़े के कारण उसे विशेष पीड़ा हो रही थी।

गायत्री ने पानी फिर आँखों से लगाया; रामू ने आखें खोलीं। कुछ कहा, पर शोक, गायत्री न समझ सकी। हा ईश्वर! इस समय यदि रामू को वाक्-शक्ति दी होती।

गायत्री रुँधे हुए स्वर से बोली—"मेरे प्यारे।" और कुछ अधिक न कह सकी। आँखों से नीरव अविरत अश्रु धारा बह चली।

रामशंकर ने उठने का प्रयत्न किया किन्तु गायत्री के मना करने पर भी वह रुका नहीं। अपने घुटनों के सहारे गायत्री ने रामू को बैठाया। रामू ने कुछ कहने की चेष्टा की और एक

चीख मारकर रोने लगा। गायत्री ने उसे सँभाला—एक पड़ोसी को डाक्टर बुलाने के लिए भेजा। देरतक दोनों रोते रहे।

अभी डाक्टर आने भी न पाया था कि रामू ने गर्दन डाल ली। गायत्री घबड़ा गयी। सिरहाने जाकर बैठ गयी, और रामू को होश में लाने का प्रयत्न करने लगी। रामू को कुछ चेत हुआ और उसने एक संकेत किया। गायत्री उठकर दूध लायी; मुह में एक चम्मच दूध डाला। दूसरा चम्मच जो डाला तो बह गया। रामशंकर के प्राण कूच कर गये थे। पछाड़ खाकर गायत्री शव पर गिर पड़ी।

पापी दोनों थे—ईश्वर के दरबार में; अपराधी दोनों थे एक दूसरे के। करना था पाप का प्रायश्चित्त दोनों को ही। किन्तु एक के पाप का प्रायश्चित्त हो चुका था। दूसरे के लिए अभी देर थी—इतनी बड़ी जितनी बड़ी लालसा।

---

*

रात बारह से पहले वापिस आने की बात तो शायद वह सोच भी नहीं सकता।"

"सच ! वह भी क्या करे, भाग्य में जिमखाना क्लब तो है।"

"और उनकी बैठक ज्यादातर तो प्लाउटर्स क्लब में ही जमती है। जो भी हो, क्लब लाइफ नहीं होने से उनका गुज़ारा भी कैसे चले। लेकिन उनके बारे में तहकीकात करने से तो हमारी समस्या का हल नहीं होगा। तुम ज़रा चिल्ला कर पुकारो न।"

इन्द्राणी ने सामने आकर फाटक पर मुँह रखा। अचानक रोशनी दिखाई दी। दरबान टार्च जलाता हुआ बाहर आ रहा था। इन्होंने भी टार्च जलाई।

"फिर तो कुछ उम्मीद है।"

"कौन है ? दरबान !"

"जी हुजूर !"

"फाटक खोल दो।"

"आप लोग कहाँ से आते हैं ?"

"अरे बाबा ! हम साहब के दोस्त हैं, साहब हैं क्या ?"

"पर्ची दीजिए साब....."

"दो अपना कागज.....अच्छी मुसीबत है, इन सब लोगों को अपनी जान का बहुत मोह है।"

सुहास ने कागज़ बाहर निकाला।

"अकेले रहते हैं न, सो सावधान होना ही अच्छा है।"

"हूँ.....अच्छा तुम्हीं लिखो नाम।" इन्द्राणी की तरफ पैड बढ़ा दिया सुहास ने।

"क्यों ?"

"अरे, ऐसी रात में शराब पीकर बेहोश पड़ा होगा। किसी भले आदमी का नाम देख कर कौन जाने फाटक खोलेगा भी कि नहीं। इसलिए तुम्हीं लिख दो.....।"

"वाह !" हाथ खींच लिए इन्द्राणी ने। "तब तो और भी नहीं लिखूंगी। फिर तो मेरा नाम लिखना किसी भी तरह ठीक नहीं है।"

"अरे नाम से क्या होगा ? आसानी से काम बन जाएगा। फि मैं तो हूँ। तुम्हें अकेले तो नहीं जाना पड़ रहा। समझीं न। इम्पॉर्टेन्ट देख कर ही फाटक खोलेगा।"

सुहास के हाथ में पकड़ी टार्च की रोशनी में इन्द्राणी ने जल्दी नाम लिख कर पर्ची दरबान के हाथ में पकड़ा दिया।

उनके हाथ से पर्चा ले जाते ले जाते दरबान को अचानक व ख्याल आया कि फाटक का ताला खोल कर उन्हें अन्दर घुसने को कह दिया।

"देखा ? पहली चोट में ही काम बन गया। तुम्हें शायद पह नहीं देखा, नहीं तो इतनी देर तक बाहर नहीं खड़े रहना पड़ता। चुपके-चुपके सुहास ने इन्द्राणी से कहा और बाग के बीच में से होते हुए बजरी बिछे रास्ते से दोनों कोठी की तरफ चले। कुछ ही देर में दरवाजा खुल गया। घर का मालिक खुद मौजूद था।

"देखा ! मैंने कहा था।" इन्द्राणी की बाँह पर सुहास ने थपकी दी

"नमस्कार ! भीतर आइये।" ड्रेसिंग गाउन पहने, रूखे खिचड़ी से बाल, और गोरे लाल चेहरे वाले जिस व्यक्ति ने उनका स्वागत किया उसे देखकर दोनों ही मुग्ध हुए बिना न रह सके।

खाली सुन्दर कहना ही काफी न होगा, यह तो मानों कल्पनाती था। केवल शारीरिक सौंदर्य ही नहीं था, कहीं जैसे एक अद्भुत आक र्षण भी था।

प्रति-नमस्कार करके दोनों अन्दर घुस गए।

"आप बंगाली हैं, ऐसा एक्सपैक्ट ही नहीं किया था।" ड्र रूम में बड़े सोफे पर बैठते-बैठते बोला सुहास।

"क्यों ?" उनकी तरफ भाँप उठा कर प्रश्न किया उसी सुद

इतने में इन्द्राणी सिर से स्कार्फ उतार कर कोच के एक कोने में बैठ गई।

"परिचय दे दूं ? मैं सौमित्र राय·····।"

"ये हैं मेरी पत्नी, इनका नाम तो जान ही गए होंगे। मेरा नाम सुहास सेन।"

पर्ची के तरफ एक बार ताका सौमित्र ने।

"आपको इतनी रात में परेशान किया।" लज्जा भाव से इन्द्राणी ने कहा।

"नहीं, नहीं, परेशानी कैसी ? और रात भी तो कोई ज्यादा नहीं हुई।" हाथों की अँगुलियाँ चलाते हुए अपने सिर के रूखे बाल ठीक करते-करते बोला सौमित्र।

इन्द्राणी और सुहास ने एक दूसरे की ओर ताका।

सौमित्र का चेहरा और अधखुली आँखें देखकर उन लोगों को समझने में देर नहीं लगी, शनिवार की रात साहब की बेकार नहीं गई।

जल्दी से काम निबटा कर चले जाना ही अच्छा होगा। सुहास ने और देरी करना ठीक नहीं समझा। असली बात पर पहुँचना ही चाहिए।

"देखिए, आपकी कोठी के सामने ही हमारी गाड़ी का टायर फट गया। भाग्य अच्छा था मानना पड़ेगा—नहीं तो इतनी रात गए····· साथ में ये हैं।"

"मेरा सौभाग्य·····"

सौमित्र हंसा। मुग्ध करने वाली हंसी।

"अब अगर आप मेरी थोड़ी-सी हैल्प कर सकें·····।"

"बाई आल मीन्स···अच्छा एक मिनिट। थापा·····!" सौमित्र ने बैरा को पुकारा।

"जी साब !" थापा आकर खड़ा हो गया।

"जल्दी-जल्दी चाय बना कर ले आओ।"

"माफ कीजिए, इतनी रात में अब चाय नहीं।"

"एनी टाइम इज टी टाइम। अच्छा ठीक है, फिर कॉफी पीजिए।"

"नहीं, नहीं, अब हम घर जाकर ही पिएँगे।

"अरे कब घर जाएँगे, कब खाएँगे, देरी हो जाएगी।"

"अच्छी मुश्किल हो गई,·····सच·····क्या···।" सुहास असली बात बोल ही नहीं पा रहा था।

सौमित्र ही बोला। "स्टैपनी तो है न ? मेरे आदमी जल्दी से लगा देंगे....."

"नहीं, नहीं, वो तो मैं खुद ही कर लूँगा, आपको क्यों कष्ट दूँगा, लेकिन·····

"कष्ट तो मैं और आप कोई भी नहीं करेंगे। आप परेशान न हों। बहादुर·····!"

"जी साब!"

"देखिए मि० राय!" सुहास को बोलना ही पड़ेगा। एक बार उसने इन्द्राणी की तरफ ताका—उपकार लेने आए हैं ठीक है, लेकिन·····"

"इतना न सोचिए।" उसको रोक दिया सौमित्र ने।

"नहीं, नहीं, बात तो सुनिए।" बीच में बोला सुहास।

"देखिए, असल में हमारे पास स्टैपनी भी नहीं है। सोचा था जल्दी से लौट जाएँगे, लेकिन वहाँ देर हो गई। निकलते-निकलते भी देर लग गई, इसलिए एक एक्स्ट्रा टायर भी नहीं लिया।'

"अच्छा, यह बात है। आपकी गाड़ी कौन-सी है ?"

"विली·····जीप....."

"क्या आप सरकारी कर्मचारी हैं ?"

"हाँ, लेकिन जीप सरकारी नहीं है। मेरी अपनी है।"

"अच्छा देखता हूँ। अगर जीप है तो हमारी जीप का कोई टायर लग सकता है।"

"धन्यवाद! एवर ग्रैटफुल रहूँगा। प्रैक्टिकली इतना माँगना ?

ठीक नहीं है·····।" सुहास को जैसे अँधेरे में रोशनी नजर आ गई हो।

"इतना निराश होने की बात नहीं है। मुसीबत में मनुष्य ही तो मनुष्य की सहायता करेगा।·····बहादुर! ई साब का गाड़ी बाहिर है। बड़ा गोलमाल हो गया। टायर खराब हो गया है। सुनो तो, हमारा कोई एक्स्ट्रा टायर पड़ा था न, वही उसमें लगा दो।"

"जी साब!"

बहादुर चला गया।

"थापा! साब मेमसाब आज रात यहाँ खाएँगे।·····अब जल्दी से खाने की व्यवस्था करो। मुर्गा है?"

"है साब!"

"तो प्रेशर कुकर में चढ़ा कर जल्दी से बना दो।"

"जी साब!"

इतनी देर में सौमित्र ने इन्द्राणी की ओर ताका—"सुनिए, आप लोग आज यहाँ ही खा-पीकर जाइये।"

"नहीं, नहीं, ज्यादा रात नहीं हुई।·····हम लोग घर जाकर ही खाएँगे। सब इन्तज़ाम है।"

"मालूम है। घर में तो इन्तजाम होता ही है। बट लेट बी हैब द प्लीजर·····प्लीज़·····मिसेज़ सैन!" अचानक विचित्र नेत्रों से ताका सौमित्र ने। और उस दृष्टि में जो अनुरोध था, उसकी उपेक्षा सुहास और इन्द्राणी कोई भी न कर सका।

इसके अलावा पिए हुए को चिढ़ाना ठीक नहीं, मन-ही-मन सोचा सुहास ने। खास तौर पर जब इतना बड़ा अहसान कर रहे हैं, मन-ही-मन सोचा इन्द्राणी ने।

"अच्छा! फिर मैं जाऊँ उनके पास। देखूँ वो लोग क्या कर रहे हैं।"

सुहास चला गया।

अचानक किसी भय से इन्द्राणी का सारा शरीर झनझना उठा।

पुहास को कोई सेन्स नहीं है। इतनी रात में, किसी अनजान पियक्कड़ के पास छोड़कर जाने का मतलब ? हालांकि उस आदमी में पिए का कोई चिन्ह नजर नहीं आया, फिर भी जैसा·····लाल चेहरा है उसका। सौमित्र की तरफ एक बार ताका इन्द्राणी ने। सौमित्र एकटक उसी की ओर देख रहा था। हठात कैसी नर्वस हो गई इन्द्राणी। रूमाल से एक बार नाक पोंछ ली।

सौमित्र पीतल के चिमटे से फायरप्लेस की जलती हुई लकड़ियाँ ठीक करने लगा। उसकी तरफ एक बार देखकर धीरे-धीरे इन्द्राणी बोली। "कमरा खूब गरम है। आग जल रही है, इसीलिए।"

"हाँ, आग नहीं जलाने से तो शाम के बाद बैठा नहीं जाता। आप लोग यहाँ कितने दिन से हैं ?"

"चार-पाँच महीने हो गए।"

"ओह, इसका मतलब है कि आपकी यह पहली सर्दी है यहाँ।"

"हाँ, ठंड यहाँ इतने कड़ाके की पड़ती है, यह तो सोच भी नहीं सकते थे हम लोग।"

"ठंड जोर की ही पड़ती है। इसके अलावा इस बार तो दो दिन बर्फ भी पड़ गई।"

"हर साल नहीं पड़ती क्या ?"

"कहाँ ? भयानक ठंड पड़ने पर भी कितनी बार नहीं होता।"

"फिर तो हम भाग्यवान हैं, यही कहना पडेगा। इतनी कड़ी सर्दी सहन करने पर भी बरफ देखने को नहीं मिलती तो बहुत बुरा लगता। मैंने तो सोचा था कि यहाँ के मौसम में हर साल ही बर्फ पड़ती है।"

"न, स्नो-फाल सच ही अपूर्व होता है। आप लोग अक्टूबर-नवम्बर में सन्दकफू घूम आइए।"

"सुना है। देखने जाएगें जरूर ही·····

"आहा ! बरफ से ढँका सन्दकफू अपूर्व लगता है। सब·····।"

'आप गए हैं ?"

"तीन बार। वहाँ से फालूट पदम्रज गया।"

"आपने कितना मजा लूटा है। संदकफू से एवरेस्ट भी दिखाई पड़ता है न ?"

"खाली एवरेस्ट ! कंजनजंगा, कुम्भकर्ण बीच में थ्री सिस्टर्स और बाईं तरफ एवरेस्ट, सभी कुछ।"

"वहाँ कैसा दिव्य दृष्य होता है, यह बिना देखे समझ में नहीं आ सकता।"

"मैं जरूर ही जाऊँगी। ओह, आई डाई फॉर सीनिक ब्यूटी।"

"दार्जिलिंग में तो वह बहुत मिलेगी।"

"मिलती तो है और इसीलिए वह टूर पर जब जाते हैं तो मैं उनका साथ नहीं छोड़ती। ऐसी अपूर्व प्रकृति इतने पास से दिखाई देती है, मैं तो मुग्ध हो जाती हूँ।"

हठात् इन्द्राणी को ऐसा लगा कि वह जरा ज्यादा ही खुल गई है। धीरे-धीरे बोली, "पता नहीं गाड़ी ठीक होने में कितनी देर होगी।"

"आप लोग किधर की तरफ रहते हैं ?"

"तेनजिंग के घर के आगे·····।"

"फिर तो आप लोगों को बहुत दूर जाना पड़ेगा।"

"यही तो सोच रही हूँ।"

"सोचने की क्या बात है ? पानी में तो नहीं खड़ी हैं। मेरे आदमी बहुत हैं। जल्दी ही काम पूरा कर देगें।"

"जानती हूँ।"

दोनों ही चुप कर के बैठ गए।

"आप तो बहुत अच्छी नेपाली जानते हैं।" हठात् बोल पड़ी इन्द्राणी।

"अच्छी के मायने ? जानता हूँ बस। इसके अलावा भाषा बहुत आसान है और फिर यहाँ बहुत दिन से भी हूँ। लगभग सात साल से।"

"बाप रे ! इतने दिन से इसी तरह रह रहे हैं ? यहीं ?"

"नहीं, पहले दूसरे चाय बागान में था। सींगला बाजार के पास। इस बागान में तो दो साल से आया हूँ। इसके अलावा और दो बागान में रह चुका हूँ ?"

"यह सब क्या यूरोपियन गार्डन हैं ?"

"पहले थे। अब तो·····आप इस बागान को मेरा ही कह सकती हैं। बागान छोटा ही है। बाकी दो साझे में हैं·····फिर भी बंगाली ही मालिक है। अधिकतर बागान मारवाड़ियों ने ही खरीद लिए हैं, बंगालियों के पास पैसा कहाँ हैं ?"

"आपके पास तो बहुत पैसा है।"

"कैसे ?"

"वाह ! पैसे के बगैर बागान खरीदा जाता है कहीं ? आप का बागान है, कह कर यही बात तो बोलना चाह रहे थे न ?"

"हाँ ! यह बागान मेरी अपनी सम्पत्ति है।" लज्जित होकर सौमित्र ने कहा।

"वाह, यह तो खूब अच्छी बात हुई।"

इन्द्राणी अब खूब खुल गई थी। उसके मुँह की तरफ सौमित्र ने एक बार देखा। फिर खूब धीरे-धीरे बोला, "अच्छी बात क्या है ? ऐसी जिन्दगी में क्या कम परेशानी होती है ?"

"परेशानियाँ जिन्दगी में तो आती ही हैं। और यही तो स्वाभाविक है।"

"अच्छा ऐसी बात है।" होठों के कोनों से थोड़ा मुस्कराया सौमित्र। गुस्से से इन्द्राणी जल उठी।

हठात् उसे याद आया कि चौकीदार ने कितनी अभद्रता के साथ उन लोगों को बाहर खड़ा रखा था। एक बार सौमित्र की तरफ देख कर उसने कहा—

"आपके यहाँ फारमैलिटीज खूब ज्यादा हैं। ठीक है न ?"

"क्यों ?"

"आपके साथ मिलना तो ऐसा है जैसे गवर्नर के साथ मिलना।"

"कैसे ?" सौमित्र हँस पड़ा, वही मुग्ध करने वाली हँसी।

इन्द्राणी ने ऐसा प्रगट किया कि जैसे देखा ही न हो। बोली—"बाबा ऐसी कड़ी सर्दी की रात में आपके चौकीदार ने कितनी देर बाहर खड़ा रखा। पर्ची लिखो, यह, वो·····"

"मुझे बहुत अफसोस है। फिर मैने भी उन लोगों को रात के बाद जरा स्ट्रिक्ट होने के लिए कहा है। मायने इन सब जगहों में अकेला रहता हूँ न, इसलिए कितने ही खास नियमों का पालन करना पड़ता है। अच्छा एक मिनिट के लिए माफ करें।"

उत्तर सुने बगैर ही बाहर चला गया सौमित्र। बाहर से उसकी गले की आवाज सुनाई देने लगी।

—क्या मामला है? दरबान को धमका रहे हैं क्या ? उस बिचारे का क्या दोष है ? अपने मुँह से ही तो बताया था कि उसे ऑर्डर दे रखा है ? बिना बताए भी चल जाता। नशे की हालत में कान में कुछ पड़ना चाहिए, बस फिर गुस्सा सँभाले नहीं सँभलता। इन्द्राणी कान लगाए रही। लेकिन नहीं, जूते की आवाज से वह समझ गई कि सौमित्र दूसरी तरफ चला गया। इन्द्राणी को फिर से बहुत खराब लगने लगा। हालाँकि इस तेज इलैक्ट्रिक लाइट में, इस सजे ड्राइंग रूम में बैठकर डरने का कोई कारण तो नजर नहीं आता था, किन्तु इन्द्राणी को फिर भी डर लगने लगा। सुहास ही इतनी देरी क्यों कर रहा है? सुहास भी बस ऐसा ही है। सौमित्र के लोग ही तो सब कुछ कर देंगे, फिर ? सुहास भी बहुत बढ़-बढ़कर काम करता है। उनका यही एक दोष है, बिना मतलब के सब काम में अपने को फँसाएँगे। एक मिनिट कह कर सौमित्र जो गया तो उसका भी पता नहीं है। ठीक है कि अकेले बुरा नहीं लग रहा। सौमित्र के साथ बात करने में असुविधा हो रही हो ऐसी बात नहीं, लेकिन बीच-बीच में कैसा नर्वस लग रहा था। इस तरह से सौमित्र क्यों देखता है ? या उसकी नजर ही ऐसी है ?

दूसरे कमरे से अंग्रेजी गाने की आवाज सुनाई दे रही थी, शायद वह उसके सोने का कमरा है। आहा, शनीचर की रात खूब शराब पी कर मजे से पड़ा होगा। हम लोगों ने आके मजा किरकिरा कर दिया, लेकिन इस भले आदमी को अच्छा ही कहना पड़ेगा। किसी तरह की परेशानी दिखाए बगैर, खुद ही आग्रह करके सहायता करने के लिए बढ़ गया। इसके अलावा रात के खाने का निमन्त्रण भी तो दे दिया। शायद उसी का इन्तजाम करने गए हों। लेकिन घर में और कोई नहीं है क्या? इन सज्जन के स्त्री, पुत्र या सम्बन्धी? या उनमें से किसी को साथ नहीं रखते? यह भी हो सकता है कि इस जगह सब जल्दी ही सो जाते हों, खास तौर पर सर्दियों में। हो सकता है यही बात हो। अगर पत्नी होती तो अब तक ज़रूर परिचय करा देते, क्या पता? सब तो पूछ ही नहीं पाई। पास ही दबा कर रखे गए मैगजीन में से एक उठा कर पढ़ना शुरू कर दिया। दो-चार पन्ने पलट कर और पढ़ने को मन नहीं हुआ। इन्द्राणी तो समझ ही नहीं पाती कि ये सब टिपिकल मैगजीन पढ़कर इनका मन भरता कैसे है?

घर की तरफ उसने अच्छी तरह एक बार देखा। घर की सजा-बट से भले आदमी की सुरुचि का पता चलता है इसमें सन्देह नहीं। निश्चय ही पैसे की कमी नहीं है। इच्छा पूरी करने में देर ही कितनी लगती है। कोने में रखी हुई एक सुन्दर-सी मेज पर उसकी नजर पड़ी। इन्द्राणी समझ गई वह तिपाई चाय के पेड़ के तने से बनाई गई है। तिपाई बहुत सुन्दर थी। बाहर से जूतों की आवाज आई बहुत देर बाद। इन्द्राणी ने फिर से पुस्तक में मन लगाया।

सुहास वापिस आ गया। साथ में सौमित्र था।

"मैं बहुत लज्जित हूँ मिसेज़ सेन! आपको इतनी देर अकेले-अकेले बैठाये रखा, घर में तो कोई भी नहीं है, अर्थात् बैचेलर के घर में..." हँसते-हँसते बोला सौमित्र।

"वह अकेली नहीं रहती, देखते नहीं हाथ में किताब है?" इंद्राणी

की तरफ देखकर सुहास ने कहा।

"अच्छा है। बैठिए मि० सेन ! और कुछ चिन्ता मत कीजिए, मेरे सब लोग हैं।"

"जानता हूँ। मैं कैसे आपका धन्यवाद करूँ·····!"

"फिर वही ?" बनावटी क्रोध से सौमित्र ने आँखें दिखाई। "अभी-अभी क्या शर्त हुई थी ?"

"ओह·····अच्छा····· सॉरी·····"

इंद्राणी की विस्मित दृष्टि सुहास की आँखों पर पड़ी।

"जानती हो ? जान-पहचान निकल आई। मेरे भाई अमर की याद है ?·····भागलपुर मे ?·····"

"हाँ !"

"अरे यह राय उसका खास दोस्त है। इसलिए कहना पड़ेगा कि मेरा भी पहले से ही परिचित। भागलपुर मे वे लोग एक साथ पढ़ते थे।"

"आप शायद भागलपुर के हैं ?" इन्द्राणी ने सौमित्र से पूछा।

"ठीक भागलपुर का नहीं, फिर भी वहाँ बहुत दिन रहा हूँ। मेरे मामा का घर है वहाँ।"

"ओह···मुझे भागलपुर के पास एक जगह बहुत अच्छी लगी है।"

"कहाँ !"

"गौरीनाथ का मन्दिर !"

"हाँ ! अच्छी जगह है।"

"मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है !"

"इसका मतलब है आप भागलपुर गई हैं ?"

"हाँ, मुंगेर की टुबैको कम्पनी में मेरा भाई राणा जो है। अब वह मद्रास में पोस्टेड है। उसी के पास गई थी वहाँ से गौरीनाथ। ये लोग रात में ही निकल पड़े थे, सबेरा होने से पहले ही नहा लिए थे।"

"पुण्य-संचय ?"

"कह सकते हैं। पुण्यसंचय हुआ कि नहीं यह तो पता ही नहीं, लेकिन संचय हुआ यह तो निश्चय है। उस अपूर्व श्वेत गंगा की मँझधार में, छोटे पहाड़ के ऊपर मन्दिर····· सचमुच ही अपूर्व था। मैं तो मुग्ध हो गई।" इन्द्राणी मानों उस अविस्मरणीय प्रातः को याद करने की चेष्टा करने लगी।

"कोई ज़रा-सा सुन्दर दृश्य देखकर मुग्ध हो जाना तुम्हारा स्वभाव है!" सुहास ने मजाक किया।

"अच्छा यह बात है? तब तो दार्जिलिंग आपको खूब अच्छा लगेगा? यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की तुलना नहीं है।" इन्द्राणी की तरफ सौमित्र ने सीधा ताका।

"सचमुच दार्जिलिंग मुझे अच्छा लगता है। मैंने तो घंटों कन्चनचंगा की ओर टकटकी बाँधकर सूर्यास्त के समय के नाना रंग देखें है। अपूर्व ·····इसकी तुलना नहीं है।"

इन्द्राणी की तरफ देखकर सौमित्र ने भी वही समझा। इन्द्राणी की भी शायद तुलना नहीं है। इन सज्जन को भाग्यवान कहना पड़ेगा।

इन्द्राणी मानों सौमित्र की प्रशंसा अनुभव करने लगी।—उसे कुछ परेशानी-सी हुई।

"अच्छा अगर गाड़ी ठीक होने में ज्यादा देर न लगे तब ये क्यों बेकार में खाने-पीने का इन्तज़ाम करें? हम लोगों को तो जाते ही खाना मिल जाएगा।"—इन्द्राणी ने अचानक सुहास से कहा।

"हाँ, हाँ, निश्चय ही यह तो ठीक बात है·····आप बेकार···।"

"ना·····" सुहास की बात सौमित्र ने पूरी नहीं होने दी। "आप लोग मेरे अतिथि हैं। इसके बाद अब आपकी बात नहीं चलेंगी।"

"क्या कहूँ·····।"

"घबरा क्यों रहे हैं? मेरे लिए तो दार्जिलिंग में एक स्थान हो गया। क्लब के अलावा अच्छी-सी एक जगह मिल गई है। रोज-रोज जाकर खाना-पीना चलेगा, अत्याचार किया जाएगा।"

"अच्छा ही तो है !"

"अच्छा ही है ? आहा ! इसके बाद·····बार-बार जाऊँगा। तरह-तरह के खाने की फरमाइश करूँगा कि आप परेशान हो जाएँ। यहाँ थापा जो पकाता है, बस ? पता है, बहुत दिन से सूक्त और घटा[1] खाने को नहीं मिला। अब आपके ही पास जाकर सूक्त और घंटा खा कर आऊँगा। खिलाएँगी न ? कितने दिन से यह सब नहीं खाया।"

इन्द्राणी की छाती के अन्दर कैसा-सा होने लगा। इतना पैसा, इतना इंतजाम। फिर भी देखने-भालने वाले आदमी के लिए अन्दर ही अन्दर कितना भूखा हो उठा है। ये नौकर-चाकर जो कुछ करते हैं—

"अपने नाते-रिश्तेदार में से किसी को क्यों नहीं ले आते ?"

"कौन है मेरा ?"

"क्यों ? भाई बहन या·····?"

"कोई नहीं। माँ-बाप तो बहुत दिन हुए मर गए, बचपन में ही। भाई-बहन भी नहीं है और भीष्मदेव होने के कारण विवाह नाम का सत्कार्य करने का अवकाश ही नहीं मिला।"

"इस बार वही सत्कार्य कर डालिए ! विवाह तो कर ही सकते हैं इस प्रकार अकेले-अकेले,·····" इंद्राणी ने सहज भाव से ही कहा।

"नहीं, नहीं। ठीक ही हैं। ये सब ब्याह-व्याह न करिए। शादी का मतलब ही झमेला करना है।" सुहास ने कहा।

"ओह !···तो मैं शायद झमेला हूँ ?" इद्राणी ने बनावटी क्रोध दिखाया।

"नहीं मिस्टर सेन ! मिसेज सेन जैसी स्त्री के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।" मुग्ध पुष्टि से ताका सौमित्र ने।

इन्द्राणी यह देख कर फिर से थोड़ी-थोड़ी परेशान हो उठी।

"वेल, अच्छा, क्या खाएँगे बताइए।" अचानक सौमित्र उठ खड़ा हुआ।

१. एक विशेष बँगाली पकवान।

"जो कुछ भी हो। इतनी रात को क्यों हंगामा कर रहे हैं ? दाल रोटी जो भी हो।"

हा: हा: करके सौमित्र हँस पड़ा। उसके बाद रेडियो-ग्राम के दूसरी तरफ काँच की डलिया खिसका कर उसमें सुसज्जित शराब के बक्से में झूलती हुई बत्ती जलाई, लाइन में सजाई हुई तरह तरह की शराबें झुककर उसमें से चुनते-चुनते बोला—"बाइजॉब ! मैंने भी पीने की बात नहीं कही। आई मीन ड्रिंकिस सर्टेन्ली यू·····।

"जरूर·····आहा ! यह तो बहुत सुन्दर प्रस्ताव है।·····" सुहास लपक कर उठा।

"क्या पिएँगे ? विह्स्की ? एक स्कॉच भी है।"

"स्कॉच ? गुड हैवन्स·····यह क्या सुन रहा हूँ ?" सुहास अपीन खुशी को छिपा नहीं सका।

"हाँ स्कॉच ! मैं देशी शराब तो जरा भी सहन नहीं कर सकता।"

"सहन तो बहुत से लोग नहीं कर सकते, लेकिन मिलेगी कहाँ ?"

"हाँ उस तरह से तो मैं भाग्यवान हूँ, मुझे अक्सर मिल ही जाती है, आपको·····?" इन्द्राणी की तरफ देखा सौमित्र ने।

"थैंक्स, कुछ नहीं।"

"वाह कुछ नहीं कहने से चलेगा ? इतनी सर्दी की रात कोई एक एपेटाइज़र।"

"नहीं, मेरा नेचुरल एपेटाइज बहुत है। देख लीजिए खाना कम पड़ जाएगा। बहुत मुश्किल में डाल दिया।

"घर में पूर्णत: स्त्री-शून्य होने के कारण यहाँ एक भी सॉफ्ट ड्रिंक की व्यवस्था नहीं है, बहुत मुश्किल हो गई। आप क्या सिर्फ बैठी रह जाएँगी ?" सौमित्र दुखी हुआ।

"वाह उससे क्या हुआ ? मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

"फिर भी।"

"जरा सी जिन और लाइम पी सकती हैं क्या ?" सुहास ने कहा।

"बाई आल मीन्स किसी तरह वही ग्रहण करके मुझे धन्य कीजिए।" सौमित्र लगभग लपक पड़ा।

"क्या जरूरत है।" इन्द्राणी ने जरा आपत्ति दिखाई।

"जरूरत की बात ड्रिक्स के कानून में नहीं लिखी मिसेज सेन ! इस संसार में सभी चीजें तो जरूरत की नहीं है।"

"नहीं मिस्टर राय ! मुझे कोई साफ्ट ड्रिंक्स दे दीजिए। साथ-साथ पीने की ही बात तो है ?"

सौमित्र ने शराब ढाल कर अतिथियों को दी। फिर अपना गिलास पास में रख कर बोला। "रेडियो जरा तेज करके आता हूं।"

दूसरे कमरे से संगीत का स्वर ज़ोर से आने लगा। अचानक इन्द्राणी का मन कैसा उदास सा हो गया।

"स्ट्रैन्ज·····"

"क्या स्ट्रैन्ज है ?" स्वाभाविक रूप से आश्चर्यचकित हो सुहास ने पूछा।

"आज ही सन्ध्या को, इस घर में यह सब होगा क्या हमने·····?" बात पूरी नहीं हुई, सौमित्र कमरे में आ गया।

"चीयर्स !"

"चीयर्स !!"

गिलास उठाकर तीनों ने ही अभिवादन किया।

उन्होंने गिलास मुँह से लगाया। सौमित्र ने थोड़ी सी पीकर टेबिल पर गिलास रख दिया। इन्द्राणी के हाथ में गिलास वैसे का वैसा रह गया। सुहास ने एक ही सांस में सारी ह्विसकी गले में उड़ेल कर गिलास मेज पर रख दिया। फिर सामने रखी काँच की प्लेट से काजू बादाम उठा कर मुँह में भर लिए।

"सचमुच स्कॉच का टेस्ट ही अलग होता है।"

"लेकिन आपने जिस ढंग से पी उससे तो यह नहीं लगता कि वह

आपको बहुत स्वादिष्ट लगी।" सौमित्र ने जरा अवाक होकर ही सुहास से कहा। फिर अपने गिलास से एक घूँट पी।

हठात् सुहास को इस प्रकार पीते देख करके इन्द्राणी को कैसी शर्म आई। लेकिन सुहास इसी तरह पीता है। किसी दिन भी धीरे-धीरे बात-चीत करते हुए आहिस्ता-आहिस्ता नही पीता। इस तरह से वह कोई आज पहली बार नहीं पी रहा। शादी के दिन से ही उसको इस प्रकार पीते देख रही है इन्द्राणी।

"सचमुच हमेशा ही ऐसे एक घूँट में पी जाता है सुहास। ऐसा लगता है किसी जबर्दस्ती के कारण उसको पीनी पड़ रही है।" इन्द्राणी ने टोके बगैर छोड़ा नहीं।

लेकिन सुहास उत्तर मे हँसते हुए कहता है—"इस प्रकार न पीने से उसे किक महसूस नहीं होता और अगर किक ही नहीं महसूस हुआ तो ड्रिंक्स करने से फायदा ?"

इस बात को लेकर इन्द्राणी ने और सिर नहीं खपाया, इस बात को उसने सहज भाव से ही लिया, लेकिन आज उसे खासतौर से खराब लगा। सौमित्र की आँखों की विस्मित दृष्टि उसकी नजर से चूकी नही। उसके अतिरिक्त सौमित्र ने जो कहा वह भी तो।

हठात् उसे सुहास बहुत मूर्ख लगा। उसे कोई मैनर्स नहीं आते। इन्द्राणी ने एक बार सौमित्र की तरफ देखा। सौमित्र अपूर्व सुन्दर लग रहा था। फायर प्लेस की आग की आभा उसके गोरे चेहरे, रूखे बालों और हिलते हुए शराब के गिलास पर पड़ रही थी। इन्द्राणी ने उसकी तरफ अच्छी तरह देखा। वह बहुत रोमांटिक लग रहा था। उसकी तरफ से नजर घुमा कर देखा। सुहास उसकी ही तरफ देख रहा था। ड्रिंक करने के बाद इसी तरह सुहास देखा करता है।

खाने की मेज पर बैठ कर उन्हें पता चला कि आज सौमित्र को बुखार है इसीलिए वह बाहर नहीं निकला। सुहास का अन्दाजा ठीक ही निकला। शनिवार की रात वे बेकार नहीं जाने देते। हफ्ता भर इस

चाय बागान को छोड़कर उनके जीवन में और कुछ भी तो नहीं रहता इसलिए। लेकिन तीन दिन से उसे बुखार हो रहा है। थोड़ा सा सूप और डबल रोटी का एक पीस छोड़ कर और कुछ नहीं खाया है। डाक्टर आकर आकर देख गया है, मामूली सा ज्वर है, सर्दी लग गई है।

"अकेले रहते है ? सावधानी से रहिए।" उसके लिए इन्द्राणी को ममता हुई। बेचारा अकेला रहता है, आहा रे।

"सावधान ?·····? कैसे रहूँ, किसे परवाह है ?"

"वाह, यह भी कोई बात हुई ?"

सुहास ने उसकी तरफ एक बार ताका इन्द्राणी ने भी सुहास की तरफ देखा। मालूम होता है इस बार भी सुहास मात्रा से अधिक पी गया है। नही तो इस प्रकार चुप होकर के बैठना, ऐसे जैसे·····। इस प्रकार से क्यो चुपचाप खाता ? कोई बात भी क्यों नही कर रहा ? इन्द्राणी ने सोचा।

चुपचाप खाते-खाते सुहास की छाती में हठात् जैसे आग सी जलने लगी। अचानक उसने लक्ष्य किया, इन्द्राणी सौमित्र की तरफ ताक रही है।

"तुम बात क्यो नही कर रहे ?"

"सच्ची, आप तो बिल्कुल ही चुप साध बैठे हैं।"

वातावरण को उन्होने थोड़ा सा सजीव करना चाहा। लेकिन उन लोगों की हँसी ठट्ठा मे सुहास योग नही दे पाया। बल्कि अगर सोचा जाए तो सच्ची इसका कोई अर्थ नहीं है, फिर भी मन में बहुत बुरा लग रहा है। लेकिन इन्द्राणी को तो वह पहचानता है। एक मिनिट की जानपहचान में ही कोई उसे अच्छा लगने लगे, ऐसी लड़की वह नहीं है। फिर भी बिना वजह ही उसका मन हठात् खराब हो गया। या कारण ढूँढने में भी नहीं मिला, इसलिए उसका मन खराब हो गया।

सौमित्र और इन्द्राणी कितनी बार जोर-जोर से हँस उठे। सुहास इच्छा करने पर भी साथ नहीं दे पाया। उसका स्वभाव ऐसा ही है। इन्द्राणी के ऊपर जब उसे मिज़ाज होता है तो बहुत जोर का मिज़ाज

होता है। क्रोध और ईर्ष्या अकारण ही होती है। इन्द्राणी को अपने अलावा किसी और की तरफ ताकते हुए देख लेने पर भी जलन महसूस होती है।

फिर भी कारण समझ में नहीं आता। लेकिन वह अपने मन में इस अस्वाभाविक व्यवहार का कोई उपाय भी नहीं ढूँढ़ पाता, किसी दूसरे को समझाना तो बहुत दूर की बात है। बाद में वह अपने इस असंगत व्यवहार के लिए स्वयं भी लज्जित हो जाता है। यहाँ तक कि इस बात को लेकर अगर इंद्राणी गुस्सा हो जाती है या परेशान हो जाती है तो वह भी उसे संगत मालूम होता है, लेकिन वह कर ही क्या सकता है? उस समय उसका अपने ऊपर भी कोई जोर नहीं रहता और इन्द्राणी के लिए उसके इस सर्वग्रासी प्यार के कारण इन्द्राणी भी बीच-बीच में क्लान्त हो जाती है। फिर भी सुहास जानता है, उसके चरित्र की यह दुर्बलता इन्द्राणी के लिए अज्ञात नहीं है, परन्तु शायद इन्द्राणी ही इसे गुप-चुप प्रश्रय देती है।

खाना खतम होते-होते करीब दस बज गए। बाहर हड्डियाँ कँपकपाने वाली जैसी सर्दी पड़ रही थी, वैसा ही दारुण कुहासा।

आग से गरम हुए कमरे को छोड़कर बाहर जाने की जरा-सी भी इच्छा न हुई सुहास की। उसके अलावा इस कुहासे के अन्दर रात को इतनी दूर ड्राइव करना—लेकिन उपाय भी क्या था? सचमुच जरा सा आराम से बिस्तर के अन्दर घुसकर सो जाते तो इतनी मुसीबत न उठानी पड़ती।

"मैं बहुत थक गया हूँ।" सुहास मानो मन-ही-मन बोला।

"मैं चलाऊँ?" इन्द्राणी ने पूछा।

"अगर ऐसा कर दो तो मेरी जान बच जाए। गुस्से से सुहास बोला।

"ठीक है मैं ही चला कर ले जाऊँगी।" उसको इन्द्राणी ने प्यार से प्रश्रय दिया।

"नहीं नहीं, इस संघातिक कुहासे में सेन तुम खुद ही चलाओ।

नहीं तो मैं·····"—सौमित्र सच्ची ही परेशान हो उठा।

"अरे, नहीं नहीं·····मैं तो ऐसे ही कह रहा था। मैं क्या उसे चलाने देता ? यह पहाड़ी रास्ता। उसके अलावा रात का ऐसा कुहासा।"

उसने कैसी अजीब-सी नजर से ताका सौमित्र की तरफ। उसके पौरुष को जैसे अचानक आघात लगा हो। उसकी स्त्री के लिए सौमित्र का दरद मानों उससे भी ज्यादा हो। हठात् गम्भीर होकर बोला, "चलो और देर मत करो।"

खडी होकर इन्द्राणी ने माथे पर स्कार्फ ठीक से बाँध लिया।

"मुझे इतना खराब लग रहा है।" सौमित्र खूब धीरे-धीरे बोला।

"क्यों ?"

"आप लोगों को इतनी रात को इतनी दूर वापिस जाना पड़ेगा। अच्छा काम कीजिए न ? कल सबेरे जाइए।"

"नहीं नहीं भाई ! कल बहुत काम है।"

"कैसा काम ? कल तो इतवार है।"

"अरे इसीलिए तो ? रविवार होने से इतनी जल्दी नहीं है।" हठात् इन्द्राणी ने कहा—

"नहीं नहीं, वह हुआ करे। आज जाना ही होगा।"

"प्लीज सेन ! आज सचमुच रुक जाओ। ऐसे जनहीन स्थान में रहता हूँ कि चौकड़ी मारने लायक लोग मिल जाने पर उन्हें छोड़ने की इच्छा नहीं होती।"

सौमित्र ने सुहास का एक हाथ पकड़ लिया। सुहास को उसकी आन्तरिकता महसूस हुई। उसने एक बार सौमित्र की तरफ देखा, पर सौमित्र इन्द्राणी की तरफ ही देख रहा था।

नहीं, ठहरना ठीक नहीं होगा—मन-ही-मन सुहास ने सोचा। उसके अलावा उसकी इच्छा अपने ही बिस्तर में सोने की हुई, वहाँ पर वह और ठहरना नहीं चाहता।

हठात् मन में उठा कि वह अभी भी इन्द्राणी को बहुत प्यार करता

है। और चौकड़ी नहीं, चले जाना ही अच्छा है। लेकिन इंद्राणी क्यों नहीं कुछ बोल रही ? उसकी क्या यहीं रह जाने की इच्छा है ?—मन-ही-मन सुहास गुस्सा हो गया।

उसी समय इन्द्राणी बीच में बोली, "धन्यवाद मिस्टर राय ! रुकने के लिए अनुरोध मत कीजिए। अब रुकना सम्भव नहीं है।"

बहुत ही मुश्किल से इंद्राणी यह बात बोल पाई। इसके बाद उन दोनों के मुँह की तरफ देखकर मन में सोचती हुई बोली, "और चौकड़ी तो भाग नहीं जाएगी। जब जान-पहचान हो गई तो चौकड़ी तो बनेगी ही। यहाँ तक कि आप आखिर में परेशान हो जाएँगे।"

कोई जवाब न देकर एक बार इन्द्राणी के मुँह की तरफ ताक कर सौमित्र भारी गले से खूब धीरे-धीरे बोला, "अच्छा तो चलिए मैं बाहर पहुँचा आऊँ।"

"नहीं नहीं, आप बुखार में इतनी ठंड में बाहर मत निकलिए।"

"नहीं, दूर तक नहीं, सिर्फ गेट तक। उतना तो मेरा कर्तव्य है।"

उसका चेहरा बहुत गम्भीर हो गया। उसी गम्भीर चेहरे पर वह कष्ट से मुस्कराहट लाता हुआ बोला, "इसके अलावा दरबान के असभ्य व्यवहार की क्षति-पूर्ति के हिसाब से थोड़ी-सी क्षमा भी शायद मिल जाए। बाद में कहेंगे, आफ्टर आल गृहस्वामी को जितना बुरा समझा था उतना बुरा नहीं निकला। शराब पीने पर भी आदमी तहज़ीब जानता है।

"क्या कह रहे हैं आप।·····सुहास जाते-जाते बोला।" विश्वास करो भई, ऐसा घर और ऐसा साथ छोड़कर सच्ची जाने की इच्छा नहीं होती। अच्छा, थैंक्स, गुड नाइट।"

वो लोग गेट से निकलकर गाड़ी की तरफ बढ़े।

उस समय बाहर घने कुहासे से चारों तरफ कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

×××

दूसरे दिन शाम को ही उन्हें सौमित्र का परिचय मिला।

थरूनक टैंज का एक दल सुहास के घर आया था। उन्हीं से कहानी सुनने को मिली। सौमित्र राय को कौन नहीं जानता। अचानक बड़ा आदमी बन गया। सौएल हैंड, स्नॉब, और न जाने क्या क्या ?

निश्चय ही सबसे अधिक लोमहर्षक जो बात मालूम पड़ी उससे तो उनके विस्मय की कोई सीमा ही नहीं रही। सौमित्र राय ऐसा ही आदमी है। उसके काले कारनामे किसे नहीं मालूम ? दार्जिलिंग के समाज में तो वह मुँह दिखाने काबिल भी नहीं है ? ऐसे बड़े दो खून करने के बाद उसके साथ कौन मिलना-जुलना पसन्द करेगा ? सुहास तो बहुत आवाक् हो गया। ऐसा काण्ड ? तब तो वहाँ रुकने से वे लोग मुसीबत में पड़ जाते, आखिर खूब बच गए। अन्त में वे लोग खूनी के पल्ले ही पड़ते।

"इसीलिए वह ठहर जाने के लिए इतना कह रहा था, समझीं।" सुहास ने उन लोगों की बात का पूर्ण समर्थन करते हुए इन्द्राणी से कहा।

लेकिन इन्द्राणी को यह बात अच्छी नहीं लगी। कहाँ, उस आदमी को देखकर खूनी तो मालूम नहीं होता ?

सौमित्र की वही अपूर्व हँसी उसकी आँखों के सामने नाच उठी। खूनी क्या इतनी आसानी से हँस सकता है ? हँसी से तो आदमी पहचाना जाता है।

"क्या पता, मुझे तो ऐसा महसूस नहीं हुआ।" इन्द्राणी कहे बगैर न रह सकी।

"आहा, लोक-चरित्र के बारे मे आपको पता ही क्या है ?"

"हो सकता है।

"हो सकता है मायने ?" अमल सरकार मानो झनझना उठा।

"हम तो उसका नाम भी सहन नहीं कर पाते। जानते हैं क्यों ? उसके सारे सीक्रेट—सारे फैक्ट्स हम जानते हैं। अरे इतना ओपन केस है। दार्जिलिंग में सब गवाह हैं। उसके काण्ड कौन नहीं जानता ? उस हैम्बग को कौन नहीं पहचानता ?"

"नहीं नहीं, ऐसा मत कहिए।" बलेन घोष ने प्रतिवाद किया। "आई थिंक, वो आदमी इतना खराब नहीं है·····।"

"अपना आई थिंक रहने दो। बहुत ही खराब आदमी है एक ड्रंकर·····"

"नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं है। यहाँ कौन है ऐसा जो पीता नहीं···

"आहा, थोड़ा बहुत कौन नही पीता ? यह कहने से क्या वैसा पियक्कड़ हो जाता है ? पीकर क्या कोई·····"

"लेकिन उनको क्या किसी ने पागलपन करते देखा है ?"

"देखा नहीं, लेकिन सुना तो है।"

"यही कहो भई, सुनी हुई बात है।"

"हाऊ सिली ! अरे पी-पीकर पागल होकर ही तो खून किया है।"

"शक है !" बलेन घोष चुरुट जलाते फिर बोले।

"आई चेलेंज"—रबीन मजूमदार उछल उठा। "मैं केस को पूरी जानता हूँ।"

"तब तो रोबीन, तुम इतना भी जानते होगे कि वह केस में बेकसूर छूट गया था।"

"अरे वो सब तो पैसे का खेल है। कौन नहीं जानता ?"

"तुम लोग तो जलन के मारे ऐसी बात कहते हो !"

"आपका मतलब ?" सबके सब बलेन घोष पर गुस्सा हो गए।

"अच्छा अच्छा·····" सुहास ने उन सबको रोक दिया। "हमें इस विषय में बात करने की जरूरत ही क्या है ? इसके अलावा आफ्टर आल, किसी की अनुपस्थिति में उसके विषय में आलोचना करना ठीक नहीं।"

कृतज्ञता से इन्द्राणी ने सुहास की तरफ ताका। इसीलिए तो सुहास उसे इतना अच्छा लगता है।

"नहीं सेन, बात को तुम इतनी लाइटली मत लेना। तुम्हारी स्त्री इतनी सुन्दर है, मस्ट बी मोर केयरफुल।"

"ओहो ! मुझे इन पर पूरा विश्वास है।"—इन्द्राणी की तरफ ताक कर सुहास हँसा, इन्द्राणी स्वाभाविक रूप से शर्मा गई। हठात् उसे क्यों बीच में खींच लिया ? उन्हें क्या कोई अक्ल नहीं है।

"आप लोग बस करिए।" खिड़की के पास से इन्द्राणी ने कहा। उनकी बातचीत शुरू होते ही वह खिड़की के पास चली गई थी।

"आप लोग सच्ची ही बहुत बढ़-बढ़कर बोल रहे है।" उसने फिर कहा—"सचमुच पता नहीं आप लोग कैसे है ! कहाँ का कौन, रात को मुसीबत में पड़ कर थोड़ी सहायता लेने गए, उसको इतनी इम्पार्टेंस देने का क्या मतलब ?"

"रियली, तुम लोग ही बता रहे हो, लो चाय पियो।" सुहास ने आलोचना के ऊपर पर्दा डाल दिया।

इन्द्राणी ने सब के सामने चाय बढ़ाई। उन सब की बातों में साथ देते हुए भी उसका मन खराब हो गया।

सोचा भी नहीं जा सकता। ऐसा सुन्दर चेहरा, निश्छल व्यवहार और हँसी ! सचमुच सौमित्र की हँसी अपूर्व है। बिल्कुल शिशु की तरह। और वही आदमी खूनी ? असम्भव ! लेकिन क्या पता ? आदमी पहचानना मुश्किल है।

× × ×

वे लोग जब गए तो नौ बज गए थे।

दार्जिलिंग की सर्दी की रात।

चारों तरफ घना कुहासा। इसके अलावा हड्डी कँपा देने वाली सर्दी।

इन्द्राणी आकर बाहर की तरफ बन्द बरान्डे में खड़ी हो गई। इतना कुहासा न होता तो चाँद की रोशनी में कन्चनजंगा का अपूर्व सौन्दर्य देख कर मन भर जाता। कुहासा में कुछ दिखाई नहीं देता। सब ढँका हुआ है। कुहासे की चादर में सब बन्द है। मालूम होता है

मनुष्य का मन भी ऐसे ही घने रहस्य से ढँका हुआ है। नहीं तो सौमित्र के जैसे खुले दिल वाला सहज मनुष्य का अतीत भी इतना घृणास्पद है, यह किसे मालूम था ? सच या झूठ। क्या मालूम ?

निश्चय ही वे लोग खुद भी तो उसे पहले-पहल पागल और बुरा आदमी समझे थे। अपने स्वार्थ से उपकार लेने गए थे। सर्दी की रात में बेचारे ने सारे दिन बुखार से कमजोर देह को लिहाफ में से निकाल कर आतिथ्य में कोई भूल नहीं की, बल्कि बुखार से उसका लाल चेहरा देख कर उन्होंने स्वयं भी तो उसे 'गहरे नशे में' ही सोच लिया था। शायद ऐसा ही होता है।

सच कहा जाए तो उन्हीं लोगों के लिए यानी सुहास का साथ देने के लिए ही उसने मद्यपान किया था, अतिथि-सेवा करने के लिए। फिर भी उसके सम्बन्ध में कोई बात सोच लेने में उन्हें देरी नहीं हुई। पराए आदमी के विषय में मनुष्य क्या कुछ सोच लेता है। किसी भी तीसरे आदमी के बारे में कुछ भी कल्पना कर लेने में मेहनत नहीं लगती। अपना कुछ बनता बिगड़ता नहीं, इसीलिए शायद किसी भी आदमी के विषय में, कोई भी धारणा बना कर उसकी चर्चा करना मनुष्य का स्वभाव हो गया है। फिर इतने विश्वास के साथ बातचीत कही जाती है मानो सब कुछ प्रत्यक्ष ही देखा या सुना गया हो। अपने लोगों को विश्वास कराने के लिए प्राणपण से चेष्टा की जाती है, लोग अत्यन्त सहजता से सब कुछ कर लेते हैं। बल्कि देखा जाता है वास्तविक घटना के साथ अथवा तथ्य के साथ कोई मेल नहीं बैठता। यह भी शायद एक रहस्य है। इसमें क्या सुख मिलता है पता नहीं ?

इन्द्राणी की छाती से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा।

"जल्दी से खाना दो।" अमल वगैरह को बिदा करके आते ही सुहास ने पुकारा। "सच्ची अच्छा नहीं लगता। आज इतना थका हुआ था, सोचा था रात देर नहीं करूँगा, जल्दी से सो जाऊंगा, लेकिन उन लोगों ने व्यर्थ बेकार की बकवास करके देरी कर दी।"

बेकार की थी तो फिर इतनी देर तक सुनते क्यों रहे ?" चलते चलते इन्द्राणी बोली।

"मच्ची न सुनना ही उचित था। फिर भी पर-चर्चा जमे तो बुरा नहीं लगता।"

"लेकिन तुम्हें तो पर-चर्चा अच्छी नहीं लगती।"

"अच्छी नहीं लगती, यह बात ठीक है, लेकिन यह खबर एकदम बेकार की पर-चर्चा ही है, ऐसा नहीं लगता।"

"किस तरह पता लगा ?"

"अफवाह के मूल में कुछ तो होता ही है।"

"सब समय नहीं।"

"हो सकता है, उन्होंने सच्ची बात ही कही हो।"

"कैसे पता ?"

"मेरा मन कहता है।"

"हूँ, मन कहता है !"

"नहीं नहीं, सच मेरा भी यह विश्वास है कि हर समय मनुष्य को फेस वैल्यू से समझना ठीक नहीं।"

"क्या पता, उन सब बातों पर मुझे विश्वास नहीं होता।"

"क्यों ?"

"जाने क्यों ?"

"लगता है सुन्दर मुख देख कर सब भूल गई ?"

"वाह, तुम भी कैसी अद्‌भुत बात करते हो। मेरे मन में होता है कि हमेशा ही हम लोग मनुष्य को बाहर से देख करके उसके बारे में गलत धारणा कर बैठते हैं, क्या ऐसा नहीं है ?"

"करते हैं, सो तो ठीक ही है। तुम मुझे प्यार नहीं करतीं। लेकिन मैं बाहर से ही सोचता रहता हूँ कि तुम मुझे बहुत प्यार करती हो, मेरे अलावा और कुछ नहीं जानतीं, मेरे अलावा तुम्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता।" कहते हुए इन्द्राणी को सुहास ने पास खींच लिया।

"क्या ऐसा नहीं है ? अच्छा !"

"चलो, रहने दो। खाया जाए। बहुत रात हो गई।"

"नहीं—"

"गुस्सा मत हो रानी, मैं तो जानता हूँ, तुम मुझे कितना प्यार करती हो।"

इन्द्राणी की कमर पकड़ कर सुहास उसे खाने की मेज की तरफ ढकेल कर ले गया।

× × ×

खाने का कमरा छोटा है, शायद इसीलिए सुहास को वह सोने के कमरे की अपेक्षा ज्यादा आरामदायक लगता है। शाम से ही फायर प्लेस में काफी लकड़ी डालकर माली ने आग जला रक्खी है, इसीलिए खाने के बाद सुहास को कमरे से निकल कर हिलना भी अच्छा नहीं लग रहा था। काँटे चम्मच से खाना चल जाता है, इसलिए हाथ धोने का हंगामा भी नहीं करना पड़ता। डिनर खतम करके खाने की मेज पर बैठे-बैठे ही सुहास ने चुरुट सुलगाई।

"अरे ! क्या हो रहा है ? उठो।"

बाकी माँस-मीट सेफ में रखते-रखते इन्द्राणी बोली।

"उठना नहीं।" हुक्म के लहजे में सुहास बोला।

"नहीं का मतलब ? यहीं रात काटोगे क्या ?"

"हाँ आज से।"

"क्या मतलब ?"

"क्यों तुम्हारा इससे क्या बनता बिगड़ता है ? तुम तो अब मुझे प्यार नहीं करतीं न।"

"जगे-जगे स्वप्न देख रहे हो क्या ? या भगवान का आदेश पाकर कोई·····।"

"नहीं मजाक नहीं। मैं सच समझ सकता हूँ।"

"खाक समझ सकते हो !" काम करते-करते इन्द्राणी ने कहा।

अचानक हाथ बढ़ाकर सुहास ने उसका कोट खींच लिया। अचानक खींचने से इन्द्राणी के हाथ से तरकारी का काँच का बर्तन छूट कर झनझना कर टूट गया। कमरे में बिछे कारपेट पर तरकारी बिखर गई। रसोई से बहादुर और काँची दोनों ही दौड़ते हुए आए।

"क्या कर रहा था काँची ?" इन्द्राणी ने धमकाया। "खाना खतम होने पर इधर आ जाए वो तो नहीं, दिन भर बातें ही बातें करता रहता है।" इन्द्राणी ने उसके ऊपर ही अपना गुस्सा उतारा, और सुहास अपराधी की तरह बैठा चुरुट पीता रहा।

"ले, अच्छी तरह उठा कर फेंक दे। हाय-हाय ऐसा सुन्दर बर्तन टूट गया। क्या खींचातानी करते हो तुम !" खूब धीरे-धीरे शिकायत सी करके, तौलिए से हाथ पोंछ कर इन्द्राणी खाने के कमरे से चली गई। और काँची को वही काँच के टुकड़े उठा कर कूड़े में फेंकते देखते अचानक सुहास को अपनी छाती के अन्दर एक तीव्र यन्त्रणा सी महसूस होने लगी।

× × ×

अगले शनिवार के प्रातः ही सौमित्र ने आफिस से फोन किया। आज वह दार्जिलिंग आएगा। इसीलिए आज रात को सेन दम्पत्ति को उसने डिनर के लिए निमन्त्रण दिया।

"आना असम्भव है।"—विवशता के स्वर में सुहास बोला।

"क्यों ?" सौमित्र का आश्चर्य-चकित स्वर साफ ही समझ में आया सुहास को।

"सम्भव नहीं।"

"प्लीज सेन।"

"नहीं नहीं, सच्ची·····दूसरी जगह एपॉइंटमेंट है।"

"उसे क्या कैंसिल नही कर सकते ?"

"नही भाई, माफ करो।"

"प्लीज सेन !"

"आहा, समझते क्यों नही ? माइ प्लेजर टू, अगर आ पाता तो सचमुच मुझे भी बहुत खुशी होती।"

"लेकिन मैंने टेबिल जो बुक कर रखी है।"

"ठीक नहीं हुआ, हमारा यह एपॉइंटमेंट बहुत पहले से है। अफ़सोस है। अच्छा भई।" फोन रख कर सुहास निश्चित हो गया। नहीं नहीं, ऐसे लोगों के साथ ज्यादा दोस्ती करना अच्छा नहीं। इसी बीच उसके बारे में बहुत सी बातें सुनीं, हालाँकि अमल वगैरह की सारी बात पर विश्वास भी नहीं करता और इस उमर में इन सब बातों को लेकर वह मगजपच्ची भी नहीं करता, फिर भी क्या जरूरत है ? उसे शान्ति अच्छी लगती है। वह इन सब झंझटों में पड़ना नहीं चाहता। ऐसे साध से बनाई हुई गृहस्थी में ऐसे-ऐसे रहस्यमय आदमियों को घुसाने की क्या जरूरत है ?

लेकिन आफिस से वापिस आने पर जो सुना उससे वह अवाक् हुए बगैर नहीं रह सका।

"तुम खामखा राय देती क्यों हो ?" सुहास झल्ला उठा।

"वाह मुझे फोन करके इतना अनुरोध जो किया ?"

"करने से ही क्या होता है ?" सुहास गुस्से से फट पड़ा।

"भला आदमी प्रोग्राम बना बैठा है।"

"बैठा रहे। हमसे पूछ के किया था ?"

"नहीं, सो तो नहीं।"

"फिर जाओ तुम अकेली जाओ, मैं नहीं जाऊँगा।" गुस्से से सुहास ने समाचार पत्र उठा लिया।

"क्या पागल की तरह बोल रहे हो ? सात बजे भला आदमी खुद आ पहुँचेगा।"

"तुम उसे भला आदमी कहती हो ?"

"क्यों ?"

"मेरे नहीं कहने के बाद भी जो घर पर पर-स्त्री को फोन करके एपॉइंटमेंट करता है, क्या उसको भला आदमी कहा जाता है ?"

"तुमने नहीं कर दिया था क्या ?"

"नहीं तो क्या ? मैने तो कह दिया था हमारा दूसरा इगेजमेंट है।"

"स्ट्रेन्ज ! आश्चर्य है।"—इन्द्राणी अवाक् हो गई। "क्या करूँ फिर ? मुझे तो मालूम नहीं था।"

"फिर मैं अब क्या कहूँ, बताओ ? क्या कांड कर बैठती हो बस।"

हठात् इन्द्राणी का चेहरा देख कर सुहास को बहुत माया हुई। उसके ऊपर गुस्सा करके और क्या होगा ? वह तो सौमित्र की चालाकी पकड़ नही पाई न। अब किया ही क्या जाए। हठात् दिमाग में आया, सौमित्र के आने से पहले ही अगर वो लोग कहीं चले जाएँ तब तो आमने-सामने होने का डर नहीं रहेगा। आँखों का लिहाज भी बचा रहेगा। वही अच्छा है

इन्द्राणी को जल्दी से तैयार होने के लिए कह कर खुद भी जल्दी से चाय पी कर तैयार हो गया।

सुहास का यही स्वभाव है। कितना ही गुस्सा क्यों न हो, किसी भी आदमी के मुंह के ऊपर नही बोल पाता। आंखों का लिहाज उसे बहुत होता है। इसीलिए वह इन सब मामलों में श्रेष्ठ मार्ग खोज लेता है। ओट मे हो जाना, आज वही मार्ग उसे पसन्द आया।

×××

वापिस आकर उन लोगों ने सुना।

सौमित्र ठीक ही आया था। आदेशानुसार काँची ने ठीक ही कह दिया था, घर में नहीं हैं।

सौमित्र वापिस चला गया।

बच गए, इस अपमान के बाद अब वह निश्चय ही कभी नहीं आएगा।

बैठकखाने में घुसते ही उन लोगों ने देखा। टेबल के ऊपर एक पैकेट और एक बोतल रखी थी। बोतल के नीचे एक चिट्ठी रखी थी।

—आप लोगों के न मिलने पर दुखित होकर वापिस जा रहा हूँ। एक स्कॉच मिली थी, सेन के लिए रखे जा रहा हूँ। और मिसेज सेन के लिए कुछ चाय। ग्रहण करने पर मै अपने आपको धन्य समझूँगा।

"अरे वाट सिक्सी नाइन!"—सुहास उछल पड़ा।

"नहीं छोकरे का दिल भी है"—बोतल उठा कर उसे घुमा-घुमा कर देखने लगा सुहास—"वाह बहुत बढ़िया।"

इन्द्राणी अवाक् हो गई—बोतल हाथ में लेकर सुहास को कितनी कितनी प्रचण्ड खुशी हो रही है? कौन कहेगा कि इसी सौमित्र को छकाने के लिए सारी शाम, ऐसी सर्दी मे पैट्रोल फूँक कर इधर-उधर भटकना पड़ा है, और अब उसी की दी हुई चीज को सिर माथे से लगा कर हुर्रे कर रहा है।

"वाह! खुशी नहीं होगी क्या? चीज क्या है यह तो देखना पड़ेगा?" इन्द्राणी की आश्चर्य-मुद्रा को ताड़ते हुए सुहास बोला।

"आश्चर्य!"

"आश्चर्य काहे का?"

"ऐसे ही।" उसके पास से हट कर इन्द्राणी ड्रेसिंग रूम में चली गई।

"अरे सुनो!"

"नहीं।"

"वाह गुस्सा क्यों करती हो? तुम्हारे लिए भी तो दे गया है फर्स्ट क्लास दार्जिलिंग दी लोह-प्रिया।" नीचे झुक कर अभिवादन की मुद्रा में सुहास बोला।

"पेट में जाने से पहले ही नशा चढ़ गया? क्या इसके स्पर्श से

ही काम बन जाता है ?"

"वाह इसमें नशे की क्या बात है ?"

"नही तो अब तक इतना क्रुद्ध चेहरा हठात् प्रसन्न हो गया कैसे ?"

सुहास गुनगुना उठा—"रियली स्ट्रैन्ज !"

एक बोतल स्कॉच देख कर जो काण्ड कर रहे हो, उससे तो मालूम होता है कि तुम्हें वो मुझसे भी ज्यादा प्यारी है।"

"पागल ! तुम्हारी क्या कोई तुलना है ?" पास में आकर सुहास ने इन्द्राणी की कमर पकड़ कर जकड़ लिया।

"तुम तो अतुलनीय हो, मेरी रानी।"

"खाक ! सब मुँह देखी। मतलब बेमतलब खाली घूमते रहते हो। मेरी कितनी याद रहती है मन में ? बोलो तो ? मुझे कितना अकेला लगता है, यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? बताओ तो ?'

"समझाने से क्या होगा रानी ? मैं जानता हूँ, सच बताओ, डू यू फील बोर ? नहीं",

"पलावर पॉट्स आर नेवर बोर्ड।"

"लेकिन तुम तो पलावर पॉट नहीं हो।"

"बिल्कुल वही हूँ।"

"कैसे ?"

"क्या है मेरे जीवन में बताओ तो ? क्या स्वाधीनता है ? माली की मर्जी से धूप में निकलती हूँ। दिन खतम होने पर छाया में लौट जाती हूँ।"

"क्या बोलती हो रानी ? पढ़कर तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।"

"हो सकता है।"

"सकता है नहीं, सच में है।"

"देखो तुम्हारे लिए यह मजाक की बात हो सकती है, किन्तु मुझे जीवन में यही अनुभव करना पड़ रहा है।"

"क्या बोलती हो रानी ?"

"ठीक ही कह रही हूँ। सचमुच मैं बहुत उदास हूँ, बिल्कुल अकेली। ज्यादा समय तुम्हारा टूर और काम में निकल आता है, लेकिन मेरा समय कैसे कटे ? बता सकते हो ?"

"क्यों इतनी किताबें हैं ? तुम्हें तो किताबें पढ़ना बहुत अच्छा लगता है।"

"अच्छा तो जरूर लगता है, क्योंकि उसके अलावा और उपाय ही क्या है। किताब पढ़ना जरूर अच्छा लगता है, लेकिन वही तो मेरा जीवन का आधार होकर नहीं रह सकता।"

"वही आधार बना है ?"

"वही, सिर्फ वही। कोई बाल-बच्चा भी तो नहीं है कि उसे खिलाऊँ डुलाऊँ।"

"रानी···!" घायल जानवर की तरह चिल्ला उठा सुहास। फिर खूब धीरे-धीरे बोला—'मैं लज्जित हूँ। उसका मुझे कितना अधिक दुख है यह तो तुम जानती हो।"

"मैं क्या करूँ, बताओ ? लेकिन···मैं और नहीं चला पा रही।" फूट-फूट कर इन्द्राणी रो पड़ी। "हर समय इतना खराब लगता है, कुछ करने को नहीं। इतना भयानक अकेलापन !"

"रानी ! रानू मेरी प्रिया !!" इन्द्राणी को एकदम बाहों में खींच लिया सुहास ने। "मुझसे तुम्हारा रोना सहा नहीं जाता। नहीं सहा जाता मुझसे। खास तौर पर तुम्हारे इस अकेलेपन के लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ।"

"नहीं नहीं ! तुम्हारा उत्तरदायित्व नहीं है। तुम्हारा क्या दोष ?" सुहास की छाती में से रोते-रोते इन्द्राणी बोली।

"क्यों भुला रही हो ? जानती तो हो, डाक्टर ने परीक्षा कर के मुझी को दोषी ठहराया है, लेकिन मैं क्या करूँ ? क्या कर सकता हूँ मैं ? बिल्कुल हेल्पलेस हूँ। मुझे क्षमा करो·····क्षमा करो·····।"

अपने गोरे नरम हाथ से इन्द्राणी ने सुहास का मुँह बन्द कर दिया। और प्रबल आवेग में सुहास ने अपने भूखे होंठ उसके बालों पर धर दिए।

काफी देर बाद सुहास ने प्रायः फुसफुसाते हुए प्रश्न किया, "अच्छा रानू!"

"क्या?"

"तुम से एक बात पूछू?"

"बोलो!"

"आज डिनर में नहीं जा सके, इसलिए तुम्हें बहुत गुस्सा है न?"

इन्द्राणी ने जवाब नहीं दिया।

"बोलो गुस्सा है न?"

"नहीं!"

"मैं जानता हूँ।"

'कैसे?"

"तुम्हारा मुँह देख कर!"

"डिनर में नहीं जा सके, इसलिए मैं गुस्सा हो गई, यह बात क्या मुँह पर लिखी है?"

"कारण तो वही है।"

"बहुत ही धीरे-धीरे सुहास के आलिंगन से अपने को छुड़ा कर इन्द्राणी सोने के कमरे में चली गई।

×××

"आपको धन्यवाद देना है।" आखिर सुहास को फोन करना पड़ा। "कोटिशः धन्यवाद।"

"नहीं नहीं, इसमें धन्यवाद देने की क्या बात है? अच्छी चीज मिलने पर क्या लोग अपने मित्रों को नहीं देते?"

"ठीक है ! लेकिन हमें सचमुच में अफसोस है । उस दिन हम लोग उपस्थित नहीं हो सके, अर्थात् हम लोगों को पहले से ही दूसरी जगह जाना निश्चित था । मिसेज सेन को इसके बारे में मालूम नहीं था ।"

"तो इसमें क्या हुआ ? मैंने सोचा था, तुम्हारी जो सरकार है उनके दरबार में अर्जी पेश करने से काम बन जाएगा, इसलिए मेरी ही भूल हो गई । तुमने तो कहा ही था ।"

"फिर भी खराब लगता है ! समझे ?"

"अच्छा, ठीक है ! इस शनिवार की रात तुम्हारे यहाँ डिनर होगा ! माँग कर निमन्त्रण ले रहा हूँ ! इससे ठीक हो जाएगा न ।"

"बिल्कुल, आलवेज़ वैलकम ! जरूर आ रहे हो न ?"

"कब ?"

"किसी भी दिन ! लेकिन आओ जरूर ।"

"अच्छा, आज तो बुधवार है । अगले शनिवार । अच्छा ?"

फोन रखने ही सुहास का मन खराब हो गया ।

जिसकी घनिष्टता से बचने के लिए इतना झमेला किया था अब बातों-ही-बातों में उसी को निमन्त्रण ।

फोन करके इन्द्राणी को बता दिया । लेकिन इन्द्राणी परेशान ही हुई ।

'सौमित्र आदमी तो खराब नहीं लगता, किन्तु सुहास का जैसा स्वभाव है, कहीं कुछ सुन लेगा तो उसी को सोचने बैठ जाएगा । पाँच बार बोलेगा । गैर आदमी अच्छा हो या बुरा हो, उसके कारण अपनी गृहस्थी में कलह करना किसे अच्छा लगता है ?"

इसके अलावा अमल वगैरह ने भी शनिवार को कहा था । दोनों दलों के आमने-सामने होने पर तो कहना ही क्या ! उन्हें किसी का लिहाज़ नहीं है, बल्कि किसी को दो-चार ऊँची-नीची बात सुना कर अपना जोर दिखाने का मौका मिलने पर मौका छोड़ते भी नहीं । लेकिन किसी को कोई चोट पहुँचाने की बात सोची भी नहीं जा सकती । किसी

भी कारण से हो, किसी का मुँह उदास देखने पर भी बहुत दु:ख होता है ! सुहास को ही इससे बहुत दु:ख होगा । लेकिन करा ही क्या जाए ! शनिवार को अमल वगैरह को जल्दी-जल्दी बिदा कर देने से काम बन जाएगा ।

हठात् इन्द्राणी को अच्छा लगा । सौमित्र आएगा इस ख्याल से ? हो सकता है ! अकारण ही वह गुनगुना उठी ।

उस दिन रात का सौमित्र का लाल चेहरा उसकी आँखों के सामने फिर गया । हँसी कितनी सुन्दर थी उसकी । भले आदमी की सिर्फ बातचीत ही अच्छी नहीं थी । अद्‌भुत थी वह खुले दिल की हसी ।

इन्द्राणी को अच्छा नहीं लगता है ।

सुहास को भी अच्छा नहीं लगता, इनकी सिर्फ आफिस और नौकरी बातें । और हाँ, सबका अड्डा जमने पर तो उसके अलावा और बात ही नहीं । किसका प्रमोशन हुआ, किसका बॉस कितना गबदू है, अमुक व्यक्ति ने इतने थोड़े वेतन में मकान खड़ा कर लिया तो किस तरह ? और न जाने क्या-क्या ? इसके अलावा मानो जगत में उनके लिए कुछ है ही नहीं । इन्द्राणी को यह सब सोचने से भी हँसी आती है ? किसने किसको अंगूठा दिखाकर कौशल से उन्नति कर ली, इन सबका हिसाब रखने से फायदा ही क्या ?

फिर भी ये लोग इन्हीं सब बातों की गवेषणा कर करके सुहावनी सुहावनी शामें काट देते हैं । और कुछ नहीं तो चरित्र की बात उठा कर ही पर-निन्दा करना इनका काम है । हाल के लड़कों के भाग्य में तो कुछ और ही है, उस दिन अमल वगैरह का दल बैठकर के कितने लोगों की निन्दा कर गया । इंद्राणी का तो सिर दर्द होने लगा । सुहास को भी यह सब पसन्द नहीं है, इसीलिए अड्डा ज्यादा देर तक नहीं जम पाया । आखिर इसलिए भी सुहास को सौमित्र का संग-साथ चाहिए । और कुछ नहीं हो तो कुछ चेहरे ही बदल जाएंगे । उस आदमी की

दुनिया इन लोगों की दुनिया से कुछ अलग ही है। यही क्या खराब बात है ?

×××

शनिवार को शाम से पहले ही बलेन घोष और निर्मल तालुकदार आ पहुँचे। इनमें से कोई भी अमल वगैरह के गुट का नहीं है, यह सोच कर उन्हें थोड़ा आश्वासन हुआ। सौमित्र के सम्बन्ध में अमल वगैरह ने कुछ कम नहीं कहा।

हो सकता है सौमित्र अभी आ जाए। फिर ये उस चाय बागान के मैनेजर को किस प्रकार ग्रहण करेंगे, यह भी एक समस्या है। चाय बागान के मैनेजर के सम्बन्ध में इनका मतामत कोई सुखकर नहीं होगा, इस बात को सुहास बहुत अच्छी तरह जानता है। तब भी इन सब बातों की लेकर वह ज्यादा नहीं सोचता। इस उमर में किस को मित्र बनाएँ और किस को न बनाएँ, इस बात को लेकर दूसरे लोग माज-पच्ची करें, यह बात वह जरा भी पसन्द नहीं करता।

बहुत दिन के बाद आज इंद्राणी ने सुहास के पसन्द के रंग की साड़ी पहनी और उसी रंग का कार्डिगन भी पहना।

"ठंडे देश में जिस प्रकार बहुत-सी खास-खास सुविधाएँ हैं उसी तरह बहुत-सी असुविधाएँ भी हैं। लिपस्टिक से अपने होठों की रेखा को स्पर्श करते-करते इन्द्राणी बोली।

"अर्थात् ?" शीशे में अपने बाल और एक बार सँवारते हुए सुहास बोला।

"अर्थात् सर्दी में जैसे शृंगार नष्ट नहीं होता, उसी तरह कोई अच्छा कपड़ा-वपड़ा भी नहीं पहना जाता। एक तो जूते मोजे, उस पर कार्डिगन, कोट !"

"बुराई क्या है ?"

"सचमुच सजने की इच्छा ही नहीं होती !"

"वाट, यू लुक वन्डरफुल।"

आइने के अन्दर से सुहास की मुग्ध-दृष्टि इंद्राणी को दिखाई दी !

"जाओ, बड़े ओ हो !" घूमने वाला स्टूल घुमाकर इंद्राणी ने स्वामी की तरफ देखा !

सुहास ने झुककर उसका चुम्बन ले लिया फिर धीरे-धीरे बोला, "आई एम प्राउड आफ यू।"

"थैंक्स"—इंद्राणी ने शरीर पर यू-डी-कोलन छिड़क लिया।

"रानू ! आज तुम सचमुच में बहुत सुन्दर लग रही हो, रियली, किन्तु....."

'किन्तु क्या ?"

"मेरे अलावा और किसी के लिए तो नहीं सज रहीं ?"

"पागल ! अच्छा जाऊँ जरा रसोई में एक बार देख आऊँ।" उसके सिर के बाल थोड़े हिला कर इंद्राणी रसोई की तरफ चली गई।

सुहास फिर से बाल ठीक करने बैठ गया !

×××

सुहास रेडियो-ग्राम में रिकार्ड छाँट-छाँट कर लगा रहा था। कालिंग-बेल बज उठी। सौमित्र आ गया क्या ? नहीं, बलेन घोष और निर्मल हैं।

"हैलो !"

"क्या बात है ? कहीं जा रहे हो क्या ?"

"जाऊँगा, पर बाद में।"

"फिर तो थोड़ा बैठा जा सकता है।"

"जरूर हीं !"

उन लोगों को लाकर सुहास ने ड्राइंग रूम में बिठा दिया।

"तुम्हारी मिसेज़ कहाँ हैं ?"

"भीतर।"

"उनके साथ कुछ बात करनी है !"

"बात ! क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, उसी हाल में एक फंक्शन होगा, उसके लिए उनकी जरूरत पड़ी है।"

'कौन से हाल में ?"

"उसी नृपेन्द्र नारायण-पब्लिक-हाल में ?"

"कब ?"

"होगा तो नए साल में ही। फिर भी अभी से ही सब कुछ आरंभ करना होगा। लो, वो आ गई ! आपके साथ कुछ परामर्श करना था।"

"आज तो....."

'हाँ, हम लोग तो बाहर जा रहे हैं, इसलिए एक काम करिए न ! परसों आइए। तब काफी देर तक बैठ के बातचीत हो सकेगी।"

"वाह, चाय पिलाए बगैर ही भगा देंगी क्या ?" निर्मल ताल्लुकदार हँसा।

"नहीं नहीं, ऐसी क्या बात है ? इन्द्राणी चाय....."

"कह दिया है....."

उनके चाय पीकर चले जाने के बहुत देर बाद सौमित्र आया।

उस दिन की तरह नहीं, आज साहबी पोशाक में। रूखे बालों में ब्रश फेरा हुआ था। बटन होल में एक छोटा-सा सफेद फूल था, एकदम टिप-टाप। सचमुच ईर्ष्या करने लायक चेहरा था सौमित्र का। सुहास मन-ही-मन इस बात को स्वीकार किए बगैर न रह सका।

इन्द्राणी ने सौमित्र की मुग्ध-दृष्टि देख ली। उसके हाथ से उसी का लाया हुआ एक गुच्छा फूल लेते हुए इंद्राणी हठात् लाल पड़ गई।

"फूल बहुत सुन्दर हैं।" आहिस्ते-आहिस्ते वह बोली।

"जिन्होंने ग्रहण किया है उसे अधिक नहीं।"

"थैंक्स फॉर कम्पलीमैन्ट्स·····" धीमे स्वर से इंद्राणी बोली ! उसके बाद दूसरी तरफ फायर प्लेस के ऊपर रखे हुए फूलदान में फूल सजाने में व्यस्त हो गई।

"अपने आप ही निमन्त्रण लेकर आप लोगों को परेशान तो नहीं किया ?"

"हम लोगों ने उस दिन शाम को हठात् आपके यहाँ पहुँचकर जो परेशान किया उससे अधिक नहीं।"

"आहा ! उस दिन तो आप लोग मुसीबत में पड़ गए थे। और मेरा सौभाग्य था, नहीं तो क्या मैं आप लोगों से मिल पाता ?"

'अच्छा ही होता।" बिना मुँह मोड़े इन्द्राणी बोली।

"किस का अच्छा ? मेरा तो नहीं।"

"आपका ही, रोज-रोज यह सब तो नहीं लाना पड़ता। उस दिन क्या-क्या दे गये, बताइए तो।"

'मेरी खुशी।"

सुहास उनके बीच में नहीं बोला।

प्रत्यक्ष में तो सौमित्र के आने से वह खुश ही हुआ। सौमित्र के आने से उसे अच्छा ही लगा। इस प्रकार खुले दिल के आदमी ही उसे पसन्द हैं। ऐसा नहीं कि दूसरों की बातों में सिर्फ नौकरी, मानों नौकरी के लिए ही वे जिन्दा हैं।

जितनी देर तक वे लोग बातें करते रहे उतनी देर सुहास गिलास में मन पसन्द काक्टेल की तैयारी करता रहा।

रेडियोग्राम में चलता रहा रवीन्द्र-संगीत ठीक इसी समय समाप्त हो गया। बल्कि यह भयानक चुप्पी सुहास को बहुत खराब लगी।

रिकार्ड लगाने के लिए वह इधर खिसक आया।

"रवीन्द्र-संगीत ही लगाऊँ या और कुछ ? रविशंकर का सितार सुनेंगे या यहूदी मैनिन का वायलिन ?"

सहास रिकार्ड छाँटने लगा।

इतने में इन्द्राणी आकर फायर-प्लेस के पास कुर्सी पर बैठ गई। आग की लाली उसके छोटे लाल गाल पर और धानी रंग की साड़ी पर पड़ कर एक अद्भुत रंग की सृष्टि कर रही थी।

अगर चित्रकार होता तो ऐसी ही एक तस्वीर बना कर रख लेता, इन्द्राणी की तरफ एक बार देख कर सौमित्र ने मन ही मन सोचा।

लकड़ी वगैर ठीक करके—इस तरफ घूमते ही इन्द्राणी की आँख पड़ गई।

मुग्ध-दृष्टि से सौमित्र उसे देख रहा था।

सौमित्र की बार-बार यह मुग्ध-दृष्टि इन्द्राणी को खराब लगी।

"मिला रिकार्ड ?" उसने सुहास से प्रश्न किया।

"कहाँ है बताओ तो ?"

"मैं देखता हूँ।" सौमित्र उठ खड़ा हुआ।

इन्द्राणी की जान छूटी।

सुहास की भी.....

उसे यह काम अच्छा नहीं लग रहा था। इसके अलावा इस ठंडी रात में.....।

पास की मेज पर से सुहास ने ड्रिंक्स लाकर आफर की। साथ में कुछ नमकीन वगैरह था। चियर्स के साथ उन लोगों ने शुरू की। इन्द्राणी कब आकर उनके साथ मिल गई, इस बात का ख्याल ही नहीं रहा। सुहास का जिद्दी स्वर में मेज थपथपाकर तर्क करना, और सौमित्र की ऊंचे स्वर में वही दिल खोल कर हँसी जाने वाली हँसी।

बाहर गिरजाघर की घड़ी में टन-टन करके नौ बजे।

"अरे रे, नौ बज गए। खाना परोसने को कहूँ ?" इन्द्राणी उठ खड़ी हुई। "कांची !"

"हुजूर !"

कांची के आने पर उसको कुछ निर्देश दिए इन्द्राणी ने।

सुहास ने घड़ी देखी। "सिर्फ नौ बजे हैं।"

" 'सिर्फ' कह रहे हैं ?" सौमित्र ने सुहास से कहा ।

"खाते-खाते रात जवान हो जाएगी । चलिए ।"

"सचमुच इतना अच्छा लग रहा था । समय कैसे कट गया, पता ही नहीं चला । इसके अलावा काफी रास्ता वापिस जाना पड़ेगा ।"

"आपको बहुत देरी हो गई न ?"

"अभी तो नहीं हुई, शनीचर को अकसर ही लौटते-लौटते बारह बज जाते हैं । फिर वापिस जाते-जाते बज ही जाएंगे । लेकिन सेन, आप चिन्ता न करें, बहुत देर तक सहन कर लिया है ।"

"तुम भी यह याद रखना ।"

"यही तो" सौमित्र हँस पड़ा ।

तीन घंटे के अन्दर ही सौमित्र सुहास के इतना निकट आ गया था, यह देख कर इन्द्राणी अवाक् हो गई । थोड़ी सी आश्वस्त और थोड़ी खुशी भी जरूर हुई ।

सुहास भी जैसे बातचीत में पागल हो गया । रेडियोग्राम का संगीत भी इतनी देर तक उनका बैक-ग्राउन्ड-म्यूजिक का काम कर था । अचानक हेमन्त मुखर्जी का स्वर सुनाई दिया । "मुझे छिपा कर इसी हृदय में ।"

सभी अचानक चुप हो गये ।

"अपूर्व"—सुहास ने चुप्पी तोड़ी, लेकिन उसने अनुभव किया कि वे दोनों ही रुक गए हैं । इन्द्राणी की तरफ लक्ष्य किया । हठात् उसके मन में हुआ कि शायद इन्द्राणी सौमित्र की तरफ ही अधिक ध्यान दे रही है ।

बस, मन में ऐसी बात उठते ही फिर और कोई बात ही नहीं । क्या होता है उसको ? हठात् मन उसका बहुत दुखी हो गया ।

वह खुद भी समझ रहा है कि इसका कोई खास अर्थ नही है । "गृहकर्त्री" को तो आवाहन देना ही पड़ेगा । अतिथि हैं न ? फिर भी, एक 'किन्तु' उसके मन को कांटे की तरह गोद रहा है । मानो उससे

सुहास का छुटकारा नहीं। सुहास ने जोर से अपने मन को ठीक करने की कोशिश की।

वह जानता है कि ऐसा कितनी ही बार हुआ है। अपने मन की इस गति को वह किसी भी तरह संयत नहीं कर पाता। परिणाम-स्वरूप कितनी ही अनावश्यक अशांति होती है, लेकिन सब जानते-बूझते भी मानो वह एक निष्क्रिय दर्शक ही भूमिका निभाने के अलावा और कुछ नहीं कर पाता।

आज भी उसका व्यतिक्रम नहीं हुआ। अमल वगैरह से सौमित्र के विरुद्ध सुने हुए अभियोग ने उसके मन को गोदना शुरू कर दिया।

खाने के बाद ही सुहास बोला। उसकी वही खराब बीमारी थी जो उसे खुद भी पसन्द नहीं। लेकिन उसके हाथ से उसकी कोई निष्कृति भी नहीं।

इन्द्राणी के लिए वह बहुत ही स्वाभाविक था। उसके औचित्य बोध का परिचय देने के लिए अतिथि की विशेष खातिर करना, किसी खास स्वादिष्ट वस्तु के खाने के लिए बार-बार कहना, सब कुछ हठात् सुहास को बहुत ही खराब लगने लगा।

इन्द्राणी शायद सौमित्र की तरफ कुछ ज्यादा ही ध्यान दे रही थी। इतना ध्यान न देने पर भी चल जाता, मन ही मन सुहास ने सोचा। इन्द्राणी की तरफ अच्छी तरह सीधी नजर से ताकने की इच्छा भी नहीं हुई सुहास की।

इन्द्राणी को शायद इस बात का ध्यान भी नहीं। किन्तु खुशी से इन्द्राणी का उज्ज्वल मुख, उसके हृदय के आवेश से उत्तप्त हँसी से भरी हुई आँखें, सब कुछ मानो सुहास को असहनीय हो उठा। सुहास के अलावा इन्द्राणी को और कोई सुखी नहीं कर सकता।

असम्भव !

खास तौर पर सौमित्र जैसा व्यक्ति। इन्द्राणी क्या सौमित्र का अतीत भूल गई ? उसका वही जघन्य कांड ? फिर ? जो आदमी नशा

करके आदमी का खून कर सकता है, उसके लिए और क्या असाध्य हो सकता है ?

आज उसको खाने पर बुलाना तो केवल भद्रतावश ही था और फिर खाने के लिए बुलाया नहीं था, वह तो उसने खुद ही निमन्त्रण करवा लिया था। तब तो उसे और न नहीं कहा जा सकता था। लेकिन सिर्फ यहीं तक व्यवहार करने से चल सकता था। सीमा छोड़ कर इतनी आंतरिकता दिखाने की क्या जरूरत थी ? यह इन्द्राणी की ज्यादती है। सौमित्र ने अपनी इच्छा से ही तो निमन्त्रण ले लिया था, लेकिन इन्द्राणी के व्यवहार से ऐसा लगता है जैसे उस जैसे अतिथि को खिला कर वह लोग कृतार्थ हो गए हैं। लेकिन सुहास शायद यह बात भूल गया था कि इन्द्राणी का स्वभाव ही ऐसा है। वह अतिथि की ऐसे यत्न और मनोयोग से अभ्यर्थना करती है कि हरेक ही उससे खुश हो जाता है। इस विषय में इन्द्राणी की तो ख्याति है, फिर·····? "गृहिणी" की इस ख्याति से सुहास भी तो कितनी बार खुश हुआ, और गर्व किया है। बल्कि जाने से पूर्व अगर अतिथि उसे यह बात नहीं कह कर जाते तो वह मन ही मन थोड़ी सी कमी महसूस करता रहता है। लेकिन हठात् आज क्या हुआ उसको ?

इसी तरह होता है उसे। हठात् उसके दिमाग में कहीं से कोई कीड़ा घुस जाता है कि सब गोलमाल हो जाता है। यह तो कोई आज नई बात नहीं है। यहां तक की इन्द्राणी के पीहर से लोगों के आने पर भी तो कितनी बार ऐसा सोचा है। क्यों वह सुहास की उपेक्षा करके उन लोगों की तरफ इतना ध्यान देती है ? सुहास अपने सर्वग्रासी प्यार में किसी और को एक इंच भाग भी नहीं देना चाहता। उसके अकेले के लिए ही इन्द्राणी की सृष्टि हुई है। इन्द्राणी उसकी है। इन्द्राणी की सारी दुनिया का अर्थ है सुहास। इसका व्यतिक्रम करने की क्या जरूरत है ? आज भी उसे जलन होने लगी सौमित्र की तरफ ज्यादा ध्यान देने के कारण। हठात् उसके दिमाग में एक बात आई।

"अच्छा राय ! तुमसे एक बात पूछू ?" खाना रोक करके सुहास ने कहा।

औपचारिकता की आवश्यकता नहीं—सौमित्र ने उंगली उटाई। "एक क्या, कई बात पूछो।"

"नहीं, मामला गम्भीर है।"

'लेकिन दोस्ती के बीच में क्या गंभीर ?"

"जरूर ही, लेकिन एक बात है !"

"क्या बात है ?"

"तुम्हारे सम्बन्ध में।"

"मेरे सम्बन्ध में ?"

"हाँ ! सुना ही है·····अर्थात् तुम्हारा व्यक्तिगत !"

इन्द्राणी ने सुहास की तरफ देखा।

हठात् क्या बोलना चाहता है वह ? सुहास के पागलपन के लिए इन्द्राणी बराबर डरती रही है। ऐसे तो ठीक है, लेकिन जिद हो जाने पर उसकी अभद्रता की सीमा नहीं रहती, फिर आज उसकी ऐसी इच्छा क्यों हो रही है ?

"मायने सिर्फ सुनी सुनाई बात है।"

"आहा ! सभी तो सुनी हुई बात होती है। भई, अपनी आँख से हम लोग और देखते ही कितना है ?"

"वह तो ठीक है। लेकिन·····।"

"बोल ही डालो क्या सुना है ?"

"अच्छा, इससे पहले तुम क्या किसी और चाय बागान में थे ?" सुहास ने पूछा।

"जरूर, इसके पहले दो बागान में घूम चुका हूँ, अर्थात् घूमना पड़ा है। तुम लोगों को बतलाया तो है।"

"मुझे नहीं मालूम था।"

"मिसेज सेन को कहा था।"

"ओह सॉरी ! सुहास को फिर से बहुत गुस्सा आया। इन्द्राणी को अलग से बताया गया है। आखिर उसने फिर पूछा। "वह तुमने क्यों छोड़ दिया ?"

"क्या, इससे पहले का बागान ?"

"हाँ ! इससे ठीक पहले वाला बागान ?"

"ओह ! वह एक अध्याय था समाप्त हो गया।"

"क्या उसे बताने में आपत्ति है ?"

"नहीं, नहीं ! आपत्ति काहे की ?"

"वो सब बात रहने दो।" इन्द्राणी ने मृदु स्वर से कहा। इससे सुहास की जिद और बढ़ गई। "बताओ न।"

"पहले तो मैंने खुद ही यह बागान खरीद लिया। इसलिए पराये बागान में काम करने का और प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरा कारण जरा कटु है, रादर सैड, एक घटना घट जाने से मुझे वह बागान छोड़ देना पड़ा।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि वह सैड मामला क्या था ?"

"क्या जरूरत है ? रहने दो....." इन्द्राणी ने फिर से बात दबाने के लिए हलकी-सी चेष्टा की।

वह इस बार अच्छी तरह ही समझ गई थी कि सुहास क्या चाहता है। कुछ दिन पहले अमल वगैरह से सुनी हुई वही कुत्सित कहानी।

सुहास उसकी जाँच कर लेना चाहता है, और इन्द्राणी के सामने सौमित्र को जरा नीचा भी दिखाना चाहता है। इंद्राणी सुहास की नजर पहचान रही है।

इन्द्राणी खूब अच्छी तरह समझ गई कि सुहास इतनी सुन्दर रात को व्यर्थ ही कटु बना देना चाहता है। वह ठीक ही शंकित हुई। लेकिन सुहास ने जिद पकड़ ली। इन्द्राणी की हल्की-सी बाधा से उनकी जिद और बढ़ गई।

उसने अपनी कुर्सी से जरा झुक करके जिज्ञासु दृष्टि से सौमित्र की

तरफ ताका। इसके बाद सुहास ने एक बार इंद्राणी की तरफ भी देखा। इंद्राणी की आँखों में नीरव अनुरोध था। लेकिन नहीं, सुहास की जिद मानो और भी बढ़ गई। वह थोड़ा झुक करके बोला,

"हम दोस्त हैं। हमारे बीच में तो कुछ भी छिपाने का प्रश्न नहीं उठता। क्या विचार है तुम्हारा राय ?"

"अवश्य ही ! लेकिन मामला कटु है ! क्या फिर भी सुनोगे ?"

"सुनने के लिए ही तो पूछा है ?"

"मायने घटना इतनी वीभत्स थी कि मैं खुद भी उसको भूल जाना चाहता हूँ।"

"वीभत्स !"

"हाँ ! थोड़ी बहुत तो जरूर सुनी ही होगी, हो सकता है सारी ही सुनी हो !"

"सब नहीं, इसीलिए तुम्हारे मुँह से ही सुनना चाहता हूँ।"

इंद्राणी को मानो और सहन नहीं हुआ। उसका खाना समाप्त हो गया था, वह उठकर खिड़की पर जा खड़ी हुई।

शीशे की खिड़की पर भारी पर्दा खिसका कर दूर पहाड़ की ओर देखने लगी इंद्राणी। कुहासे से थोड़ा बहुत ढँका हुआ था। उसके बीच ही लम्बे-लम्बे पाइन के पेड़ के ऊपर चाँद की रोशनी पड़ रही थी। बाहर एक अद्‌भुत स्वप्नमय रात थी। इस सुन्दर रात को वह किसी भी तरह इस तुच्छ बात को लेकर वाद-प्रतिवाद में और नीचता में काटना नहीं चाहती थी। उसका मन इसके अन्दर बद्ध होकर नहीं रहना चाहता। उसका मन बार-बार यह कहने लगा, यह रात तुच्छता के लिए नहीं है। उसकी देह और मन इसी ठंडी रात में कुहासे से घिर कर उसमें मिल जाने के लिए अकुलाने लगा। न चाहते हुए भी उन लोगों की बातचीत उसके कान में पड़ी। सुहास अभी भी जिरह कर रहा था। आज उसको जिद चढ़ गई है। वह ऐसे ही करता है।

"घटना सचमुच में ही इतनी क्रूर थी कि आज भी मुझे आँखों के

सामने स्पष्ट दिखाई देती है।"—सौमित्र बोला।

"उसका सारा दायित्व तुम्हारे ऊपर ही है ? क्या नहीं ?"

"लोगों की आँखों में तो है ही।"

"लोगों की आँखों में मायने ? तुम्हारी तो कीर्ति है।" सुहास अद्भुत टेढ़ी हँसी हँसा।

इंद्राणी इस हँसी को पहचानती है। वह स्वाभाविक रूप से लज्जित और शंकित हो उठी। उसके मन की विरक्ति उसकी मुद्रा में साफ झलक रही थी। आवाज करते हुए उसने पर्दा खींच दिया।

सुहास यह लक्ष्य करके फिर से बोला, 'तुम तो कीर्तिवान मनुष्य हो।"

यह साहबी पोशाक पहने हुए, अदब-कायदा जानने वाले सज्जनता की प्रतिमूर्ति सौमित्र का मुखौटा उतार कर फेंक देने की प्रबल इच्छा हुई सुहास की, खासतौर पर इंद्राणी के सामने। वह तो अच्छी तरह जानता था है कि इन्द्राणी को यह पसन्द नहीं। न करे पसन्द। इन्द्राणी के इस मोह को वह प्रश्रय नहीं देगा। नग्न वास्तविकता कहीं अधिक काम्य है।

सौमित्र ने इतने स्वाभाविक रूप से उत्तर दिया, मानो सुहास के व्यंग ने उसको स्पर्श ही नहीं किया। सुहास मन ही मन उसकी तारीफ किये बगैर न रह सका। इस आदमी में नाड़ी-शक्ति है।

"हाँ, लोग इसे मेरी ही कीर्ति समझते हैं।"

"लोग क्यों समझते हैं ? तुम क्या इसे अस्वीकार करते हो ?"

"घटना अस्वीकार नहीं करता, लेकिन मेरी कीर्ति है, यह अवश्य ही अस्वीकार करता हूँ।"

सौमित्र सीधा होकर बैठ गया। उसकी आखें और मुँह जलने लगा। वह संयत प्रशान्त व्यक्ति आवेग के जोर से एक मुहुर्त में ही बदल गया।

"सेन !" बहुत देर बाद लगभग भरे गले से ही सौमित्र बोला।

"तुम लोगों को मैंने मित्र कहा है। मित्र ही समझता हूँ, अन्तर्मन से तुम्हें पता चलेगा कि मेरे लिए मित्रता से बढ़ कर दायित्व और कुछ नहीं है। इसलिए तुम्हारे मन से सन्देह का कांटा जब तक नहीं निकाल दूंगा तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। मैं तुम लोगों को सब कुछ बता दूंगा।"

बता देने की बात में 'तुम लोगों को' इन शब्दों ने उसे सबसे ज्यादा चोट पहुँचाई। किसी के अतीत की गुप्त बात, खास कर के सौमित्र की बात जानने की उसकी लेश-मात्र भी इच्छा नहीं है, यह सहज सत्य बात उसे बताये कैसे! बिना कुछ बोले उसने जिज्ञासु नेत्रों से सौमित्र की तरफ ताका।

"यह ठीक है कि दुर्घटना का जो नायक था वह आज नहीं है, उसको बचाने के लिए ही·····वह जो मेरा बचपन का परम प्रिय था, उसके लिए ही इस घटना का सारा दायित्व मुझे अपने सिर लेना पड़ा, जिसने मेरे जीवन में सब कुछ उलट-पुलट कर दिया, उसी की बात मैं तुम लोगों को बताऊँगा।"

"नहीं···" इन्द्राणी प्रायः चिल्ला पड़ी।

दोनों ही विस्मित होकर उसकी तरफ देखने लगे।

"मैं नहीं सुनना चाहती। ये चाहते हैं तो उन्हीं को बोलिए।"

हठात् सुहास बोल उठा। "नहीं-नहीं, रहने दो·····।"

"नहीं रुकूंगा नहीं। बोलना ही अच्छा है, और मैं बोलूंगा। कहा तो, गलतफहमी का कांटा तुम लोगों के मन में हमेशा ही घूमता रहेगा, उसकी अपेक्षा मामला साफ हो जाना ही अच्छा है। उसके अलावा दूसरों से आधी बात सुनने से तो अच्छा यह है मेरे मुंह से ही पूरी, लेकिन सच्ची बात सुन ली जाए। क्या कहते हो? लेकिन अगर तुम मेरी बात सच समझ कर विश्वास करो।"

"जरूर करूँगा·····" सुहास बेचैन हो गया।

इतने में ही इन्द्राणी कमरे में चली गई।

नाटक की तरह ही सच है—

सौमित्र के जीवन का लगभग श्रेष्ठ-काल ही उस गोलमाल में कट गया। छात्र-जीवन के पश्चात् मनुष्य जब कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करता है, अनेक आदर्शवाद साहस, आन्तरिकता और हृदय की भावनाएं, प्यार लेकर जब जीवन को ग्रहण करना चाहती हैं उसी समय में सौमित्र को निदारुण सत्य, निदारुण वास्तविक अभिज्ञता के बीच में एक कठोर सत्य समझना पड़ा। उस परिस्थिति की बात कभी कल्पना में भी नहीं आई थी, वह सारी घटना उसके जीवन में सिनेमा की तरह घट गई।

यह सात साल पहले की बात है। H83|R88S

सौमित्र उस समय रंगपो चाय बागान का मैनेजर था। नया-नया आया था वहं। कालेज-जीवन के आदर्श ने उसके मन में एक रंग लगा रखा था। मद्यपान तो दूर की बात है, उसे सिगरेट तक का नशा नहीं था। बिल्कुल काम से ही वह आया था, नहीं तो चाय-बागान का मैनेजर होने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं थी। GH4246

सारा दिन चाय बागान के कुलियों से काम करा कर, अपना मिजाज गरम करके, थक-थका कर जब वह अपने निःशब्द बंगले पर लौटता था तब एक भयावह अकेलापन उसे निगल जाने को तैयार रहता था। किताब पढ़ के, लिख के और चिन्ता करके उसका समय नहीं कटता था। उसकी नींद हमेशा ही कम आती थी, नहीं तो बहुत सारा समय वह सोकर ही काट देता।

इसी समय उसकी जान-पहचान पास वाले बागान के मैनेजर बार्केट साहब के साथ हुई। उसका एक हाथ कटा हुआ था। कब कौन सी दुर्घटना में एक हाथ टूट गया था, यह बहुत बचपन की बात है। अफवाह तो यह थी कि वह तेरह साल की उमर में एक बाघ के साथ लड़ाई कर रहा था। उसके बाद आखिर में उससे प्राण तो बच गए लेकिन बाघ ने उसका बायां हाथ वापिस नहीं किया।

साहब धाराप्रवाह नेपाली बोल सकता था। इतने दिन से वह इस

देश में रह रहा है, सिर्फ इसलिए नहीं, उसकी स्त्री भी नेपाली थी। लेकिन उसकी तीनों लड़कियां भूल कर भी नेपाली बोलना नहीं चाहती थीं। बार्केट साहब ने उन्हें क्रिश्चियन कांवेंट में पढ़ाया है, छोटी दोनों तो अभी भी पढ़ती हैं। बड़ी वाली पढ़ाई छोड़ कर घर में बैठी है। वह अक्सर बीमार रहती है इसीलिए।

एक चीज लक्ष्य करके सौमित्र अवाक् हुए बगैर न रह सका। माँ नेपाली है, वह लोग भी यहीं के आदमी हैं, लेकिन उनकी सारी फिक्र चिन्ता इस बात की है कि वह लोग कब स्काटलैंड जाएंगे जो कि उसकी असली पितृ-भूमि है। फिर ? वह लोग तो भारतवासी हैं। किन्तु बार्केट परिवार तो, विशेष करके उनकी लड़कियां तो इस बात को स्वीकार नहीं करतीं। मन में भी नहीं मानतीं। बैठक खाने में उनके स्काटलैंड वाले काका काकी और भाई बहनों की तस्वीरें हैं। एलबम में स्काटलैंड यात्रा की तस्वीरें लगी हुई हैं। कैथरीन और उनकी बहिनें उसी देश में जाने का स्वप्न देख रही हैं। अगर उनके बाप न भेजें तो वह शादी करके निश्चय ही जाएँगी। इसलिए अपनी माँ को नेपाली बोली बोलते सुन वह लज्जित होती हैं, उनकी माँ भी लज्जित होती है। पहले पहल तो सौमित्र उन्हें उनकी माँ सोच ही नहीं पाया।

बार्केट साहब ने अपनी आया से विवाह करके यहीं घर बसा लिया है। आया सुन्दरी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। लड़कियां भी सुन्दरी हैं। और चेहरे भेष-भूषा से नेपाली जाति के चिन्ह मात्र भी उन्होंने निकाल फेंके हैं। अपने नेपाली होने का चिन्ह अगर कोई नहीं मिटा सका तो उनकी माँ शान्ति देवी। सिर्फ बार्केट साहब नहीं, बार्केट के पिता सीनियर एस० बार्केट खास स्काटलैंड से इस देश में चाय का व्यवसाय करने आये थे। वह फिर अपने देश लौट कर नहीं जा सके। बागान के माली की लड़की के गर्भ से उनके लड़का पैदा हुआ था, उसका यहीं पालन-पोषण हुआ था। यहाँ से एस० बार्केट साहब चले गए। उनके लड़के ने पूरी नेपाली सीख ली। आया की लड़की के साथ शादी

करके यहीं अपना घर बसा लिया। इतने दिन बाद उनके पिता स्काटलैंड चले गए और वहाँ उनकी मृत्यु हो गई। जाने से पहले यह बागान अपनी भारतवासिनी संगिनी बार्केट की माँ के नाम लिख गए। स्काटलैंड में उनकी अपनी विवाहिता स्त्री और लड़के-लड़कियां हैं।

बार्केट के लड़के और लड़कियों ने ही यह भग्न सम्बन्ध फिर से पकड़ लिया। भारत से बार-बार अपने स्काटलैंड वाले सम्बन्धियों को चिट्ठियाँ लिखी हैं भारी-भारी प्रेजेंट इत्यादि भेजी है। अन्ततः उन्हें रक्त-कुलीनता की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इसी बीच बार्केट का बड़ा लड़का स्काटलैंड पढ़ने के लिए गया था और वहीं मर गया, लेकिन इनके बीच आत्मीयता का सूत्र पक्की तरह से गुंथ गया।

यहाँ कैथरीन और उसकी दो बहिनें गौडफ्रे और क्लोरा स्वप्न देखती रहती है कि कब स्काटलैंड जाएंगे। पैसा जमा करने के लिए कुछ दिन और चाहिए, किन्तु बार्केट साहब ने शराब पी-पी कर सम्पत्ति का कुछ भी भाग नहीं छोड़ा।

वहीं कैथरीन सौमित्र को देख कर उसके प्रति आशक्त हो गई।

सौमित्र भारतीय बंगाली है, उसके लिए लेशमात्र प्यार करना भी कैथरीन के लिए सम्भव नहीं था, लेकिन तब तक स्काटलैंड जाने के लिए पैसा जमा होने की आशा कैथरीन ने छोड़ दी थी। दिन पर दिन उसका शरीर गिरता जा रहा था। और देरी नहीं, चाय बागान के मैनेजर राय ही क्या खराब हैं? अतएव वर्तमान के लिए सौमित्र को ही दिल देने से काम चलेगा। हो सकता है कैथरीन ने इतना हिसाब-किताब न किया हो। हो सकता है हृदय के स्वभाव से ही वह सौमित्र के प्रति आकृष्ट हो गई हो, लेकिन इस मामले में सौमित्र बहुत डर गया था।

उसके मन में उस समय बूलू मित्र बसी हुई थी, उसके कालेज जीवन की संगिनी। वह बहुत धनी की लड़की है। उसे पाना एकदम असम्भव है, यह जानते हुए भी उसके प्रति उसका प्यार लेशमात्र भी

कम नहीं हुआ। उसके मन के आकाश में उस समय बूल मित्र ही एक-मात्र ध्रुव तारा थी। लेकिन कितने दिन तक इस तरह से अकेले-अकेले रहा जा सकता है? इसलिए धीरे-धीरे उसे बार्केट परिवार और दूसरे-दूसरे मैनेजरों के साथ घनिष्ट होना पड़ा। और धीरे-धीरे वह इन सब मामलों में अभ्यस्त हो गया।

तब उसका नीतिबोध, जीवनदर्शन थोड़ा-थोड़ा बदल गया। नाना देश के नाना मनुष्य देख कर जीवन को और भी विचित्र रूप में अनुभव करने लगा। सामान्य-सा एक-आध प्याला पीना अब उसे वैसा संघातिक दोष नहीं मालूम पड़ता था। फिर भी कैथरीन को यत्न-पूर्वक टालता जा रहा था। हो सकता है इसीलिए कैथरीन का प्यार और भी बढ़ गया, और लगता था सौमित्र के साथ घनिष्ट होने की प्रबल इच्छा उसे लगभग पागल कर देगी।

× × ×

चाय बागान के मैनेजरों के जीवन में जो कुछ होता है उसमें वैचित्र्य नाम की कोई खास बात नहीं। काम ही सिर्फ एक नशा हो तब तो और बात है, नहीं तो उस भयानक एकाकी-बोध और निःसंगता से मुक्ति पाने का कोई रास्ता नहीं।

सौमित्र ने भी काम का नशा किया। दिन-रात वह काम में डूबा रहता था। यूरोपियन फर्म थी, इसलिए पैसा बहुत मिलता था, लेकिन काम का बोझ भी उसको एक मिनिट के लिए नहीं छोड़ता था।

सौमित्र सबेरे ही ब्रेक-फास्ट खाकर चला जाता था।

जब सीज़न टाइम नहीं होता, अर्थात् चाय की पत्ती जमा नहीं की जाती, तब थोड़ा सा अवसर मिलता है, फिर भी थोड़ा बहुत दूसरे काम में व्यस्त होना ही होता है, लेकिन चाय पत्ती जमा करने के समय नहाने और खाने का समय भी नहीं मिलता। वह दिन-रात परिश्रम

करता रहता है। वापिस लौट कर वह रोज ही देखता कि उसकी मेज पर कैथरीन की भेजी हुई कोई न कोई खाने की चीज ढँकी रखी है। कब उस रुग्ण लड़की के लिए उसके मन में थोड़ा सा ममत्व जाग उठा है, यह सौमित्र को खुद भी पता नहीं चला।

पहले-पहले तो मेहनत करने पर भी यह जीवन खराब नहीं लगता था। उसके मन में कैसा सा अद्‌भुत अनुभव होता था, किस तरह से सजीव पत्तियाँ यत्न से जमा की जाती हैं, कई-कई प्रोसेसिंग करके उसे मनुष्य की रसना के लिए तैयार किया जाता है, यह सब सौमित्र के लिए विस्मय का रहस्य था।

धीरे-धीरे यह नया काम भी पुराना पड़ गया। इसके अतिरिक्त इन कुछ सालों में कैथरीन के लिए उसकी हृदयानुभूति ने उसे काफी विचलित कर दिया। यह प्यार नहीं था, यह मोह भी नहीं था। सिर्फ दूसरे के हृदय की पुकार का सामान्य सा जवाब देने की इच्छा थी। लेकिन उसे यह इच्छा भी असम्भव प्रतीत हुई। कैथरीन से शादी करके घर बसाना उसके लिए असम्भव था। रुचि, संस्कृति, स्वभाव कुछ भी उन उन लोगों का नहीं मिलता, फिर ?

सौमित्र ने चाय बागान का काम छोड़ देने की ही बात सोची। ठीक उसी समय कम्पनी ने उसको उच्च शिक्षा देने के लिए डेढ़ साल के लिए विलायत भेजने का निश्चय किया। सौमित्र ने ऐसा सुयोग छोड़ा नहीं। विलायत चले जाने से उसकी वर्तमान की समस्या का समाधान हो जाएगा, यह सोच कर वह निश्चित हुआ। जाने से पहले कैथरीन रो, रो कर गुस्से से लगभग पागल ही हो गई। उसका ख्याल था कि उससे शादी करके उसे विलायत ले जाना ही तो सौमित्र के लिए उचित था। लेकिन सौमित्र ने कहा कि वह तो अब भी अपना मन पक्का नहीं कर पाया है। डेढ़ साल बाद वह देखेगा कि क्या हो सकता है ?

×××

जब वह लौट कर भारत आया, तब वह खुद भी काफी बदल गया था। लेकिन सिर्फ यही नहीं, जिस जगत को वह छोड़ गया था उसमें भी बहुत परिवर्तन आ गया था। कैथरीन ने आखिर कलकत्ते के एक एंग्लो-इण्डियन लड़के से शादी करके अपना साहबी-पन कायम रखा। मुसीबत टल गई, सोच कर सौमित्र ने एक चैन की साँस ली। अब वह बूलू मित्र के साथ विवाह करने के योग्य हो गया है, यह सोच कर वह मन ही मन तैयारी करने लगा।

उसी समय उसके पास रमेन सरकार घूमने के लिए आया।

वह एक विराट मिल मालिक जागेन सरकार का लड़का और सौमित्र का बाल्यकाल का मित्र था।

रमेन को चाय बागान खरीदने की भी थोड़ी इच्छा हुई थी। वह अपने बाप के मरने पर बहुत बड़ी सम्पत्ति का मालिक हो गया था। अब वह अनेक व्यवसायों में अपना पैसा लगाना चाहता था, इसीलिए वह विलायत में सौमित्र के साथ मिलने पर और यह पता चलने पर कि वह चाय बागान में है, भारत लौटते ही सौमित्र के पास आया। सौमित्र शुरू से ही रमेन को बहुत चाहता था, उसकी बेपरवाही के लिए। इतने बड़े अमीर का लड़का था वह, लेकिन किसी भी तरह की मुसीबत विपत्ति या अनिश्चितता में कभी उसे डर नहीं लगा। स्कूल जीवन में वह सब का दल-पति था। पैसे के जोर से नहीं, अपने साहसी मन के कारण। इसके अलावा उसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति थी उसका हृदय। मित्र-परिजन की मुसीबत में वह हमेशा से बिना घबराए आगे आ गया है, लेकिन रमेन का एक दोष सौमित्र को खास तौर पर अच्छा नहीं लगता। विलायत जाने पर वह उसमें और भी बढ़ गया था।

बचपन से ही प्रचुर और असीम क्षमता का अपव्यय करने का वह अभ्यस्त हो गया था। किसी भी मामले में जरा सा भी संयम करना रमेन का स्वभाव में नहीं था। सब कुछ आसानी से ही मिल जाता है ऐसा एक मनोभाव हमेशा ही उसके मन रहता था। विलायत, अमरीका

और नाना देश घूम-फिर कर रमेन सौमित्र के पास थोड़ा विश्राम लेने के लिए और घूमने के लिए ही आया था। लेकिन रमेन के हाव-भाव और बात-चीत ने सौमित्र को बहुत चिन्तित कर दिया। कैथरीन की दोनों बहनों पर तो उसकी नजर पड़ी ही, यहाँ तक कि बागान की कुली लड़कियों के लिए भी उसकी इच्छा कुछ कम नहीं थी। मौका मिलते ही वह उनके साथ रसिक हो उठता, उनकी तस्वीर खींचता, उन्हें लेकर गाड़ी में घूमने जाता।

इस दफा सौमित्र बहुत क्रुद्ध हो गया। हजार हो, वे तो रमेन को साहब का मित्र ही समझते है। फिर ? उसने इस मामले में रमेन को सावधान करना ही अपना कर्तव्य समझा।

"रमेन ! सावधान ! अब वो दिन नहीं हैं। सोच-समझ कर चलो। दोनों हाथों से खर्च कर रहा है, इसीलिए ये लोग कुछ बोलते नहीं, लेकिन जरा सा असावधान होते ही यह लोग तुझे छोड़ेंगे नहीं।"

"तू हमेशा से ही डरपोक रहेगा ! कालेज-लाइफ में भी तुझे कोई साहसिक काम करते नहीं देखा। नहीं तो क्या इस तरह बूलूमित्र को खो देता ? वह लड़की तुझे मन से प्यार करती थी।"

"मैं यह जानता हूँ इसीलिए तो·····।"

"क्या इसीलिए ?"

"उसके योग्य होने की चेष्टा कर रहा हूँ।"

"हाँ, तू जीवन भर चेष्टा करता रहेगा और वह तेरे लिए शबरी की तरह प्रतीक्षा करती बैठी रहेगी न।"

"अगर प्यार करती है तो जरूर बैठी रहेगी, मैं तो बैठा हूँ।"

"तू बेवकूफ है। तूने जबर्दस्ती शादी क्यों नहीं कर ली ?"

"उसे प्यार करता हूँ इसलिए। उसका जिस तरह पालन-पोषण हुआ है वैसे वातावरण से अपने इस अनिश्चित जीवन में लाकर कष्ट देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। मैं खुद इतना कष्ट उठा रहा हूँ।"

"हो सकता है उसे कष्ट न उठाना पड़ता।"

"नहीं रे ! वह कष्ट नहीं उठा सकती थी। हो सकता है हमारे बीच से प्रेम ही मर जाता।"

"उसके लिए तूने सारा जीवन व्यर्थ भी नहीं किया।"

"उसे प्यार करता हूँ इसीलिए। उसका अपमान नहीं करना चाहता।"

"जा जा, तेरे दिमाग में हमेशा ही बेहूदे आइडिए घूमते रहते हैं। तू क्या सोचता है बूलमित्र इन सबकी खबर रखती है ?"

"ना रखे ! मेरा समय आने पर·····इसके अलावा यह सब आइडियोलॉजी नहीं है, दिस इज लाइफ।"

अच्छा तो तुम उसी लाइफ को लिए बैठे रहो। लेकिन मुझे वह जिन्दगी पसन्द नहीं। मेरी तो भई दूसरी बात है, हँस लो ! दो दिन की ही तो बात है।

"वाह ! क्या कहते हो ? जीवन का क्या कोई अर्थ नहीं है ? क्या उसकी कोई डेफिनेट वैल्यू नहीं है ?"

"क्या पता भई ? तुम्हारे जैसे भावुक लोगों के लिए हो, लेकिन मेरे लिए तो जीवन का अर्थ है मजे। इसीलिए तो जितने दिन हो सके मजे ले लेता हूँ।"

"जीवन में तुझे कभी भी संघर्ष नहीं करना पड़ा, इसलिए तुम और कह ही क्या सकते हो।"

"वह भी तो भाग्य है। जब मेरा भाग्य सुप्रसन्न है तब मैं मजे क्यों न लूटूँ ?"

"करो, लेकिन सीमा के अन्दर। अपने को मुसीबत में डाल कर मुझे भी मत घसीटो।"

"वाट डू यू मीन ? रमेन सरकार ऐसा लड़का नहो है भाई, सब मुसीबत झेलने के गड्स उसमें हैं, यह जानते हो ? अच्छा तुम ही कहो किसी भी दिन, किसी से, कैसी भी कोई सहायता माँगी है ?"

"हाँ, माँगी तो नहीं।"

"फिर ! मैं सहायता करता हूँ, सहायता माँगता नहीं कभी।"

"माँगी तो नहीं, लेकिन·····"

"लेकिन क्या·····?"

सौमित्र ने बात और आगे नहीं बढ़ाई। लेकिन दो दिन बाद ही, रात बेकार जाती है, इसलिए जब उसने घर पर एक काँची को रखने का प्रस्ताव किया तो सौमित्र ने काफी विरोध प्रकट किया।

फिर भी रुपये से क्या नहीं होता ? सौमित्र के सामने न सही, पैसे के जोर से उसके बागान का माली खुद ही रमेन के हाथ में अपनी लड़की दे देना चाहता है। उसके हाव-भाव से रमेन अच्छी तरह समझ गया कि माली की लड़की गंगा रमेन के प्रति काफी आसक्त हो गई है।

आखिर बहुत गुस्सा होकर सौमित्र ने रमेन को और कहीं चले जाने को कहा। लेकिन रमेन को तब सब तरह का नशा चढ़ गया था। दार्जिलिंग छोड़ कर जाने की बात की कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिए सिंहमारी के पास एक बँगला किराए पर लेकर सीधा वहीं चला गया। सौमित्र ने लज्जित होकर जब क्षमा याचना की तो रमेन जोर से हँस पड़ा।

"अरे ! भले आदमी। इस फारमेलिटी की क्या जरूरत। यह तो पता ही है कि तेरे जीवन के साथ मेरे जीवन का मेल नहीं बैठता। इसके अतिरिक्त मुझे भी बहुत असुविधा हो रही थी। बाबा, तेरे बागान में कितने कठोर नियम हैं। इसके अलावा तू तो जानता है, अपना मामला खुद ही हैंडिल करना मेरा स्वभाव है। मैं किसी की भी सहायता नहीं चाहता।"

सौमित्र को पता लगा कि गंगा इस घर में पक्की नौकरी करने लगी। सौमित्र अपने मित्र के लिए बहुत दुखी हुआ, लेकिन उपाय ही क्या था ? रमेन का स्वभाव ही ऐसा था और विदेश घूम करके तो

और भी बढ़ गया था। इच्छा होने पर सौमित्र फिर उससे मिलने भी न जा सका।

×××

पाँच छः महीने के बाद हठात् एक दिन फोन पर रमेन की आवाज सुन कर वह अवाक् हो गया। रमेन क्या अभी भी यहीं पर है? उसने तो सोचा था कि रमेन कभी का ही चला गया होगा और उसका नशा भी खतम हो गया होगा। तब तो कहना पड़ेगा कि गंगा का आकर्षण बहुत जबर्दस्त है।

रमेन ने फोन पर भी वही बात कही।

आकर्षण ही नहीं, बहुत जबर्दस्त आकर्षण और इसी प्रसंग में उसे सौमित्र की बहुत जरूरत है। आज ही शाम को आना ही पड़ेगा।

"असम्भव!"

सौमित्र को इस समय मरने की भी फुरसत नहीं है। सैकेंड क्लास की चाय की पत्ती तोड़ी जा रही है। दिन-रात कम चल रहा है। पत्ती तोड़ना, वजन करना, छाँटना, उन्हें अनेक प्रक्रिया के बाद सुखाना, पैक करना, इन सभी कामों पर तो सौमित्र को तीक्ष्ण दृष्टि रखनी पड़ेगी। इस समय दूसरे किसी काम के लिए समय देना तो असम्भव है। इस अप्रैल से अगस्त सितम्बर तक लगातार ऐसा ही चलेगा। इस समय उसे फुर्सत कहाँ? अपना बागान तो है ही, उसके अलावा दो बागान और भी हैं? वह इतना दायित्व महसूस करके अपने बागान की तरह ही देखभाल करता है। इसीलिए तो दूसरे साझीदारों को उसके ऊपर इतना विश्वास है। उस विश्वास की मर्यादा रखने में सौमित्र हमेशा सचेष्ट रहता है।

इसीलिए फोन पर उसने 'ना' कह दी।

लेकिन रमेन ने नहीं छोड़ा।

यहाँ सौमित्र के अलावा और उसका परिचित ही कौन सा है जिस के ऊपर वह निर्भर कर सकता है ? सौमित्र को आना ही पड़ेगा। सख्त जरूरत है।

आखिर बहुत कष्ट करके रात आठ बजे के करीब रमेन के पास आकर जो कुछ सुना उससे तो उसकी छाती का खून जम गया।

गंगा गर्भवती हो गई थी। यह नहीं कि उसके मन में कोई आशंका हुई नहीं थी और इसलिए उसने रमेन को बार-बार सावधान कर दिया था, लेकिन रमेन के विचार से उसकी कोई जरूरत नहीं थी। ये लोग जीवन को दूसरी दृष्टि से देखते हैं। अब लगता है कि ये लोग आँख से ही नहीं देखते।

सिर्फ ये ही लोग मामले को दबा रहे है, ऐसी बात नहीं। मामले की आकस्मिकता के कारण रमेन का आँखों मे आज तीन दिन से न न नीद है, न भूख है। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसी बात सम्भव भी हो सकती है। विदेश में कितने मजे लूटे हैं। उसकी धारणा थी कि संतान पैदा करना उसके लिए असम्भव है। डाक्टरों की भी यही राय थी, इसीलिए रमेन इतना लापरवाह था लेकिन अब क्या उपाय हो ?

यद्यपि यह लोग बंगालियों की तरह इतने शीलवन्त नही होते, फिर भी कुमारी कन्या का माता बन जाना किसी भी समाज में अच्छा नहीं माना जाता। ऐसे मामले में किसी लड़की की इज्जत धूल में मिलाने पर भले आदमी का जो कर्तव्य होता है वही करने के लिए सौमित्र ने परामर्श दिया—विवाह !

लेकिन रमेन तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। उसके जैसा, समाज मे ऊंचे स्तर वाला, विलायत घूमा हुआ आदमी, गंगा जैसी नगण्य लड़की से ब्याह करेगा ? माली की लड़की को अपने समाज में बहू कह कर उसका परिचय देते समय लज्जा से उसका सिर नहीं कट जाएगा ? इसके अलावा वह क्या विवाह के उद्देश्य से ही मजे करने आया था ? असल में उसका मतलब·····।

लेकिन उपाय ही क्या था ?

सौमित्र को तो और कोई उपाय नहीं सूझ रहा था।

रमेन को अवश्य उपाय सूझ गया था, और वही बात उसे चुपचाप मित्र को बताने में कोई सकोच नहीं हुआ।

इसी घर का एक दरबान था पूर्णा। एक मात्र वही पूर्णा इस मुसीबत से रमेन का उद्धार कर सकता है।

"क्या बक-बक करते हो। पूर्णा राजी क्यों होगा ?" सौमित्र कुछ चौंक उठा।

"राजी होगा के मायने ? हो गया। तीन हजार रुपये लेकर वह इस उत्तरदायित्व को लेने के लिए राजी है।"

"यह अमानुषिकता है।"

"मानुषिकता काहे में है ? सारा जीवन यही सब दायित्व सिर पर लेकर अपने को पागल करना ?"

"यही अच्छा होगा रमेन ! प्रायश्चित तो होगा। पूर्णा बेचारा, उसे मत डुबोओ।"

"पूर्णा बेचारा ! तीन हजार रुपये क्या फेंके जाएँगे ? वह तो खुशी से राजी है।"

"खुशी से राजी है या नहीं, यह तो नहीं जानता हूँ। हो सकता तुम्हारी बात के दबाव में और पैसे के लोभ में वह राजी हो गया, लेकिन मुझे आचर्य होता है रमेन। वह बेवकूफ डरपोक आदमी इतने बड़े बोझ को सारे जीवन अपने सिर लेने के लिए राजी कैसे हुआ ?"

"मनुष्य पहचानने में अभी भी तुम्हें बहुत देर है।"

"यही तो देख रहा हूँ। अच्छा गंगा क्या कहती है ? उसकी भी ऐसी मर्जी है क्या ?"

"मर्जी ? पागल हो गए हो ? वह तो इतना जानती भी नहीं। जब से उसे बात पता लगी है तब से वह बराबर रो रही है।"

"हाय रे ! मालूम होता है तेरे से प्यार करने लगी है।"

"खाक !"

"सच्ची, नहीं तो इनके समाज में हमारी तरह इतना बन्धन नहीं कि उसके लिए उसे डर लगे। हाय रे बेचारी !"

"बारबार 'हाय रे' मत करो सौमित्र ! उसने असल में यह समझ लिया था कि मैं शायद उससे शादी कर लूंगा। ऐसा तो कितने ही बाबू करते हैं।"

"वही करो रमेन ! मनुष्य जैसा काम होगा। हो सकता है हत-भागिनी को वही हल्की-हल्की आशा रही हो। उमर भी कोई खास नहीं है। प्यार करके....."

"उम्र ज्यादा नहीं, तुम्हारी बात सुन कर गंगा से शादी कर लेने वाला आदमी मैं नहीं। मेरे लिए तो कल्पना करना भी असम्भव है। समाज में मुंह कैसे दिखाऊँगा ?"

"और क्या कोई मुंह नहीं दिखाता ? वह लोग क्या जिन्दा नहीं रहते ?"

"हाँ, मुझको शायद खोखा सेन की तरह मूर्ख समझ लिया है, ऐसे योरुपियन गार्डन में दो हजार की नौकरी खो बैठा। क्यों ? सिर्फ एक खासिया लड़की से शादी करने के लिए। क्षण भर की दुर्बलता के लिए सारा जीवन मूल्य चुका रहा है। इतनी अच्छी योरुपियन फर्म छोड़ कर किसी मारवाड़ी के छोटे से बागान में काम करके उसको संतुष्ट होना पड़ रहा है। समाज गया, जीवन गया, भविष्य गया। अब उसका एकमात्र सहारा है मद। सुना है दिन रात शराब में डूबा रहता है।"—खूब लाल-लाल आँखें मुश्किल से ऊपर उठा कर गिलास में शराब ढालते-ढालते रमेन बोला। अरे मैं क्या उसकी तरह बेवकूफ हूँ ?"

"तुम बेवकूफ नहीं हो। अमर होते तो छुटकारा मिलता। तुम एक स्काउंड्रल हो। तुम्हारे उस खोखा सेन को कौन नहीं पहचानता ? लेकिन उस आदमी पर मेरी श्रद्धा है।" सौमित्र गुस्से से बोला।

"तुम्हारी श्रद्धा अपने पास ही रखो। मैं अपने इस अमूल्य जीवन को ऐसे नहीं खोना चाहता। जीवन क्या इतना सरल है ? ओनली वन लाइफ टू लीड ?"

"दैट आई नो। लेकिन जीवन क्या सिर्फ तुम्हारा ही अमूल्य है ? सिर्फ तुम्हारा ही जीवन कीमती नहीं है रमेन ! सभी का जीवन कीमती है। तुम्हारे घर में पन्द्रह रुपए महीने पर काम करने वाली, तुम्हें सारी रात आनन्द देने वाली, अपना सर्वनाश बुलाने वाली गंगा के लिए भी जीवन अमूल्य है।"

'थू·····" भर्राये गले से रमेन बोला।

"अरे भाई, तू हमेशा से ही बड़ा सैन्टीमेंटल रहा है।"

"मैं भी·····।"

"मैं उन्हें ज्यादा जानता हूँ। यू कैन परचेज एव्री थिंग।"

"मैं तो ऐसा नहीं सोचता।"

"अच्छा ! दिखाऊँगा !"

"तो फिर मुझे क्यों बुलाया है ? तुमने तो सारी समस्या का समाधान कर ही लिया है।"

"अरे ऐसा होता तो चिन्ता ही क्या थी ! जानते तो हो किसी की सहायता लेना ·····"

उस आदमी की बेशर्माई देख कर गुस्से से सौमित्र का सिर भन्ना उठा। लेकिन रमेन तो हमेशा से ही ऐसा रहा है और हमेशा ही तो उसकी इन सब बातों को सौमित्र क्षमा करता आया है।

"असल में मुसीबत तो गंगा के बाप को लेकर हुई। वह तो खूब षड्यन्त्र कर रहा है। आसानी से राजी नहीं हो रहा।"

"बिल्कुल ही स्वाभाविक है।"

"स्वाभाविक !" रमेन लगभग रो पड़ा। बोतल से और लाल-लाल शराब ढाल कर गटागट पी कर बोला "भाई सौमित्र ! भाई, मेरे प्राण प्रिय मित्र, तुम ही·····"

"पागलपना मत करो—" सौमित्र ने उसके हाथ से गिलास छीन लिया।

"पागलपन नहीं है भई ! मैं आज तीन दिन से खा नहीं सकता, सो नहीं सकता, कहीं घूम नहीं सकता। गंगा का बाप दिन-रात खुखरी लेकर उधर के बरांडे में बैठा है। मुझे पांच दिन का समय दिया है। इससे पहले किसी से कुछ नहीं कहेगा। लेकिन उसके बाद ? मैं तो सोच-सोच कर ही मरा जा रहा हूँ। तुम मेरे मित्र हो, इस मुसीबत से क्या मुझे नहीं बचाओगे ?"

सौमित्र ने रमेन की तरफ ताका। उसके रूखे बाल, सूखा हुआ मुँह, आँसू भरी आँखें देख कर सौमित्र का हृदय भीतर ही भीतर हिल उठा। कुछ देर पहले का घमंड और साहस कहाँ गया ? अन्दर ही अन्दर उसे सच्चा डर बैठ गया है।

"सौमी !" रमेन ने फिर पुकारा। फिर सामने बढ़ कर सौमित्र का हाथ पकड़ लिया। सच्ची रमेन उसका मित्र है। विपत्ति में उसकी सहायता माँग रहा है। अगर इस मुसीबत के समय सौमित्र उसके पास नहीं खड़ा होगा तो कैसी मित्रता ? सौमित्र ने मन ही मन उसे बचाने की चेष्टा करना ही अपना कर्तव्य समझा।

"सौमी ! भाई चुप मत बैठो। कुछ बोलो।" उसके दोनों हाथ पकड़ कर रमेन बोला।

"इस मामले में मैं कर ही क्या सकता हूँ।"

"सौमी ! एकमात्र तुम्हीं कर सकते हो। तुम्हीं कर सकते हो, आई रियली नीड योअर हैल्प।"

रमेन का हमेशा का वही साहस। ऊँची आवाज में उसने हमेशा ही कहा है कि उसे किसी की सहायता नहीं चाहिए। अभी कुछ देर पहले ही कहा है सहायता लेने से उसे नफरत होती है, क्योंकि अपनी मुसीबत अपने आप ही सँभालने की क्षमता उसमें है।

फिर ? लेकिन कुछ नहीं। इसलिए नहीं कि कुछ बोलने को नहीं

था, लेकिन यह समय बोलने का नहीं था। इस समय बोलने से अब लाभ ही क्या होगा ? दुखी मनुष्य को सिर्फ चोट पहुँचाना।

"तुम्हीं कर सकते हो सौमी ! सिर्फ तुम्हारे में ही वो क्षमता है। बूढ़ा तुम पर देवता की तरह भक्ति करता है। सिर्फ तुम्हारे कहने से ही वह सुनेगा। उसे कुछ रुपए देने से ही काम चल जाएगा, रुपए के लिए तो मैं चिन्ता नहीं करता।"

"मुझे मालूम है ! वही तुम्हारा काल है।"

"लेकिन इस समय पानी की तरह पैसा बहाने के अलावा और किस तरह मैं बच सकता हूँ बताओ ? वो बूढ़ा जितना भी पैसा चाहे मैं देने को राजी हूँ। अगर पूर्णा स्वीकार कर ले तो समाज को भी कुछ कहने का स्थान नहीं रहेगा।"

"पूर्णा की क्या स्त्री नहीं है ?"

"नहीं, बहुत दिन हुए मर गई।"

"उससे शादी करने को गंगा राजी हो जाएगी ?"

"हो जाएगी, उसे राजी करने का भार मेरे ऊपर। सच्ची, लड़की मेरी बहुत आभारी है।"

इसीलिए तो मुझे और भी खराब लग रहा है रमेन, वह तुम्हें कितना प्यार करती है।·····चलो छोड़ो।

"तुम अगर सिर्फ उस बुड्ढे को मैनेज कर दो तब भी चल जाएगा।"

×××

इसके बाद सचमुच सारे मामले का भार सौमित्र को ही सँभालना पड़ा। इसी के फलस्वरूप वह रमेन के साथ और भी घनिष्टता से जुड़ गया।

इस मामले का निबटारा आसानी से नहीं हुआ। वह भी एक

लम्बी और एक अविश्वसनीय घटना है। रमेन को पाँच एक हजार रुपए खर्च करके इस मुसीबत से रक्षा मिली। गंगा के साथ पूर्णा का सारा खर्च ही उसने बिना दुविधा के उसके हाथ में नहीं दिया, बल्कि विवाह की रात अश्रुमुखी गंगा को देख कर, असह्य मनोवेदना से सारी रात रो-रो कर बेहोश होने में भी उसको देरी नहीं लगी।

किन्तु शायद तभी से उसकी असली यन्त्रणा शुरू हुई। छुटकारा मिलते ही शान्ति मिल जाएगी, यह सोच कर ही मामले का फैसला कराने के लिए वह बेचैन था, लेकिन मुक्ति पाने के बाद मानो उसका दिल बदल गया।

कहाँ गया वह लापरवाह, बेहया, मजे लूटने वाला, उच्छृंखल रमेन? आश्चर्य था कि एक भावुक विरही यक्ष की तरह दिन और रात उसका हाहाकार और मद्यपान चलने लगा। किसी न किसी तरह रमेन को कलकत्ते भेज करके सौमित्र निश्चिंत हुआ। लेकिन रमेन को कलकत्ता में रहना और सहन नहीं हुआ और पाँच छः महीने बाद ही अचानक एक दिन वह वापिस आ गया।

अब उसको पहचानना भी मुश्किल था। बराबर बुखार और लिवर की वेदना ने उसके चेहरे को एकदम बदल दिया था। सारे शरीर पर अत्याचार की छाप थी।

उसके शरीर के बजाय शायद उसका मन ज्यादा बदल गया था। वह खुद बदल गया था। किसी अनुताप से उसकी छाती अन्दर ही अन्दर जल रही है।

रमेन के जीवन में कितनी लड़कियाँ आई हैं। किसी भी दिन मन में दाग छोड़ने वाली कल्पना भी उसके दिमाग में नहीं थी। लेकिन उस निरक्षर गंगा ने उसको क्या कर दिया कि रमेन की सारी प्रकृति ही बदल गई।

सौमित्र उसके मन की यन्त्रणा को जितना ही समझता है उतना ही उसका दयालु हृदय रमेन के लिए दुखी होता था। इसीलिए रमेन के

आने पर वह अभ्यर्थना जतलाए बगैर न रह सका। कुछ भी हो, है तो मित्र ही।

ठीक इसी समय एक घटना घटी।

उस दिन शनिवार था। लम्बे तीन महीने लगातार काम करने के बाद थोडा अवकाश मिलते ही उसने रमेन के साथ बाहर जाने का कार्यक्रम बनाया। रात-दिन शराब पीना और चुपचाप बैठे रहना, यह सौमित्र को कभी भी अच्छा नहीं लगा था। इसलिए इस रोगी वातावरण से उसको निकाल सकने की बात सोच कर ही सौमित्र थोड़ा आश्वस्त हुआ। दिन भर टिप-टिप करके बूंदा-बाँदी पड़ती रही। दार्जिलिंग की वर्षा में यही एक कष्ट है। इसका मानों अन्त नहीं। कब से शुरू हुई है, बराबर चल रही है। कीचड़ से सारे रास्ते ऐसे हो जाते हैं कि जरा सी लापरवाही होते ही गाड़ी स्किट कर जाएगी। इससे अच्छा तो है कि एक बार में ही मूसलाधार बरस कर थम जाए।

सौमित्र के मना करने पर भी रमेन नहीं माना। डिनर से पहले जिस मात्रा में उसने ड्रिंक किया, उससे सौमित्र का शंकित होना ठीक ही था। सिर्फ यही नहीं, उसने जरा भी ज्यादा नहीं पी, इसको प्रमाणित करने के लिए गाड़ी चलाने की जिद पकड़ ली। स्टेयरिंग से उसे खिसकाना किसी के बस का नहीं था। उसकी जिद ज्यादा बढ़ जाने की सम्भावना देख कर सौमित्र आखिर उसके पास में बैठ गया। सौमित्र ने भी कुछ कम नहीं पी थी। इसीलिए गाड़ी चलने के साथ-साथ ही उसने अपने आपको सीट के ऊपर ढीला छोड़ कर सिगरेट सुलगाई।

ठीक बाजार से निकल कर गाड़ी मोटर स्टैंड से बड़ी तेज स्पीड पर चली। सौमित्र आँखें मींच कर अर्धसुप्त अवस्था में पड़ा था। हठात् महसूस हुआ कि गाड़ी का पहिया किसी नरम चीज में अटक गया है और चारों तरफ से चीत्कार और आवाजें आ रही हैं। सब लोग सिनेमा देख कर लौट रहे थे। बारिश में भी काफी भीड़ थी। पहले तो सोचा कि शायद वह लोग ही जोर-जोर से बातें कर रहे थे, लेकिन

अचानक वे क्यों इतने जोर से चीखें-चिल्लाएँगे ?

"रमेन ! क्या मामला है ?"

"समझ में नहीं आ रहा, शायद कोई आदमी कुचल गया है।"

"सर्वनाश !"

रमेन को धक्का मार कर परे खिसका कर सौमित्र स्टेयरिंग पर बैठ गया। उसके बाद गाड़ी को बैक करके बड़ी तेज स्पीड से गाड़ी को सीधा हिल कोर्ट रोड पर छोड़ दिया।

शायद लोग भी पहले से नहीं समझ पाए। लेकिन गाड़ी को फिर से स्टार्ट होते देखकर दुगने जोर से चिल्लाकर गाड़ी के पीछे भागे।

बिना कोई बात बोले धीरे-धीरे एक्सिलेटर पर पाँव दबाता रहा सौमित्र। कुछ भी सोचने को समय नहीं था। मरने-मारने को तैयार उन्मत्त जनता के हाथ से इस समय तो अपनी रक्षा ही करनी होगी, नहीं तो टुकड़े-टुकड़े करके फेंक देने पर भी निस्तार नहीं है। हवा के वेग से गाड़ी चलाता हुआ कोठी के अन्दर सौमित्र ने गाड़ी घुसा दी। उन लोगों के जोर से दौड़ कर आने में भी समय लगेगा। तब तक पुलिस को फोन करके किसी न किसी आश्रय की चेष्टा करनी होगी, यह उन्मत्त जनता अब कोई तर्क नहीं सुनेगी।

तब रमेन का भी नशा टूट गया था। भौचक्का होने से उसका मुँह अद्‌भुत लग रहा था। उसको जबर्दस्ती बाथ-रूम में भेजकर खुद भी गर्म पानी से हाथ-मुँह धो कर कपड़े बदल रहा था। ठीक उसी समय थापा ने खबर दी।

"आ गए है ! बहुत लोग आ गए है ! लेकिन क्यों ?"

किसी तरह से उन्हें खबर लग गई कि गाड़ी चलाते समय उस हत्याकांड के मूल में हैं स्वयं मैनेजर साहब। सिर्फ कुचल ही नहीं, अपने प्राणों के भय से उसकी कोई व्यवस्था किए बगैर ही भाग आए। इसकी माफी नहीं।

थापा ने ठीक ही शंकित होकर खबर दी।

सौमित्र थोड़ा चुप रह गया। थापा को सच बात बता देना उचित है। मुसीबत में उसकी सहायता की बहुत आवश्यकता पड़ेगी।

"थापा, एक मुश्किल भयो। हमारा गाड़ी से एक द्वि जना मानिश-लाइक कुचले छे।"

"ए……!"

थापा ने भयभीत होकर एक अद्भुत शब्द किया।

उसका सारा मुंह सफेद पड़ गया। इसलिए बाहर इतने लोग जमा हो गए हैं। उसके साहब ने आदमी मारा है, वह सोच भी नहीं सकता। वह अपने साहब को किस तरह बचाएगा?

"साब! तपाँई लाई उनि हेरूले भेटे भने, कूटनेछन। तँपाई ईऊ घर देखि छिट् छिट् भागि जानू होस।"

सर्वनाश!

सौमित्र का रोंया-रोंया खड़ा हो गया। रमेन तो बिल्कुल अज्ञान था। वे लोग इतनी दूर भाग कर आए हैं? और थापा तो उनका स्वभाव पहचानता है। वह भी अगर इनसे डर गया तो सचमुच ही मारे जाने लायक बात है। एक तो आदमी के कुचल जाने से ही मन की क्या हालत हो जाती है, तिस पर अब इन लोगों को कैसे टाला जाए?

"सौमित्र! क्या हो गया?" बोलते ही रमेन बेहोश हो गया।

"थापा जल्दी करो!"

थापा की सहायता से रमेन को कन्धे पर डालकर पिछले दरवाजे से निकलकर सौमित्र ने भागना शुरू कर किया। तब तक थापा उन्हें सामने के गेट पर बातों-ही-बातों में कुछ समय तक उलझाए रखा।

सौमित्र भागता ही रहा।

यह समतल भूमि का सीधा रास्ता नहीं। बार बार चढ़ाई और उतराई आती है। तिस पर पैदल चलने के लिए बहुत तंग रास्ता। जगह-जगह मुसीबत आ जाने में सन्देह नहीं, लेकिन उस समय सौमित्र

पीछे भूत लगे आदमी की तरह चलता चला जा रहा था। जिस रास्ते को जीप में पार करने की सोच भी नहीं सकता था उससे भी ज्यादा रास्ता पैदल चलकर पार कर डाला। रमेन निश्चय ही हर कदम पर बैठ जाता है। रो पड़ता है। समय नष्ट करता है। लेकिन सौमित्र ने छोड़ा नहीं। धमका कर, धक्का मार कर, खींच कर, अपने इस अपूर्व मित्र को आगे ही आगे लिए चला गया।

थापा और बहादुर को कुछ जरूरी-निर्देश दे आए हैं। साहब को लौटने में रात हो जाएगी। गाड़ी गैरिज में रखी हुई है उन्हें उसका ठीक पता नहीं मिलेगा, और जब तक वो लोग सामने के दरवाजे पर साहब के लौटने की आशा में रुके रहेंगे, तब तक वह लोग बहुत दूर निकल जाएँगे। कुछ देर में थापा भी आकर उनसे मिल गया।

सौमित्र थापा का आजीवन कृतज्ञ रहेगा। बहादुर का भी। उनके दिलों में सौमित्र के लिए इतना प्यार संचित था, यह बात सौमित्र सपने में भी नहीं सोच सकता था। यह ठीक है कि बक्शीश और दूसरे-दूसरे मामलों में सौमित्र का हाथ बहुत खुला हुआ है, लेकिन पैसे से यह सच्चा प्यार नही खरीदा जा सकता। बार-बार थके हुए थापा की तरफ देखकर वह यही बात मन-ही-मन सोच रहा था।

थापा ही की सहायता से अनेक चोर रास्तों से घूम-फिर कर दो दिन दो रात के बाद जिस बस्ती में वह लोग पहुँचे, वह दार्जिलिंग नहीं था। भारत भी नही। नैपाल का छोटा-सा एक गाँव था। संदफू जाने के रास्ते में थापा के ही बड़े भाई की सुसराल वहीं थी।

इसके बाद आरम्भ हुआ उनका अज्ञातवास। वह भी एक लम्बी कहानी है।

उस समय क्रोध से उन्मत्त जनता के हाथ से अपने और रमेन को बचाने के लिए उसने जो बुद्धिमानी का काम किया, इसमें सन्देह नहीं। बाद में बाकायदा मामला मुकदमा चला। एक लाख रुपये खर्च करके आखिर में मुकदमा समाप्त हुआ। रुपया निश्चय ही रमेन ने खर्च

किया, लेकिन इतने में दार्जिलिंग और उसके पास के जिलों में सौमित्र की बदनामी छा गई।

धीरे-धीरे सौमित्र सबके सामने अपने निर्दोष होने की बात सिद्ध करने की चेष्टा कर सकता था। जो लोग इस मामले में प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित थे वह लोग इस मामले के पीछे सत्य को थोड़ा-बहुत जान भी गए थे, लेकिन जनसाधारण के सामने, खास तौर पर शिक्षित समाज के सामने सौमित्र ही उसका उत्तरदायी था।

आधा सच और आधा झूठ मिला कर उसके बारे में जो कहानी गढ़ी गई वह सत्य से बहुत दूर थी, लेकिन सौमित्र ने प्रतिवाद नहीं किया। किसी के सामने सफाई के लिए जाना तो दूर की बात सामने उपस्थित होकर भी चुप रहा है। रमेन उस समय लकवे से बीमार पड़ा था। सौमित्र उसके दुख को और नहीं बढ़ाना चाहता था। मित्र समझकर अत्यन्त दुख के समय ही रमेन ने उससे सहायता माँगी थी और उससे मित्रता का सम्मान रखा था।

मरने से पहले रमेन को पता लग गया था कि मुकदमे में उनकी जीत हो गई है। लेकिन यह बात उसे किसी भी दिन नहीं पता चली कि जिसको उसने कुचला था वह गंगा थी। सौमित्र को कुछ ही दिन में यह बात पता चल गई थी, लेकिन उसने रमेन को यह पता नहीं लगने दिया। सिर्फ गंगा ही नहीं, गर्भवती गंगा को कुचल कर रमेन ने अपनी संतान ही की हत्या की है, जिस सन्तान को पैदा होने से पहले ही जान-बूझकर त्याग करने के कारण रमेन तिल-तिल जलता रहा।

अदालत में गंगा के बाप को देखकर चौंक जाने पर भी सौमित्र ने अपने आपको सँभाल लिया था और यह बात उसने रमेन के कान में भी नहीं पहुँचने दी।

इस समस्त नाटकीय घटना में कब चार साल कट गए और इस समय सौमित्र की मुसीबत के समय कैथरीन ने जो सहायता की, सौमित्र

इसको जीवन में कभी नहीं भूलेगा। इसका उसे ठीक ही अनुताप हुआ कि वह कैथरीन को अच्छी तरह समझ नहीं पाया था।

पति के पास से आकर वह बराबर सौमित्र को इस मामले में परामर्श देती रही। गवाही की भी व्यवस्था की। नैपालियों की परिचित एक लड़की उसे इस तरह आश्रय दे रही है, यह देखकर उन्होंने भी उसकी बहुत-सी बातें क्षमा कर दीं। सौमित्र आजीवन इसके लिए उसका कृतज्ञ बना रहेगा। उस घटना के बाद वास्तव में लड़कियों के बारे में उसकी धारणा ही बदल गई। लेकिन शादी करके घर बसाने की बात उसकी कल्पना में भी नहीं आई। एक असहनीय अकेलेपन का अनुभव होते हुए भी वह किसी लड़की से विवाह करके सुख से गृहस्थी बसाएगा, यह बात वह सोच भी नहीं सका। और आज तक वही एक उपलब्धि उसके जीवन में सत्य होकर दिखाई दे रही है कि वह बिल्कुल अकेला है। नितान्त अकेला।

सौमित्र अकेला है।

चाय बागान के मैनेजरों को साधारणतः इतना अकेला नहीं रहना पड़ता। आखिर मन में अकेलापन लेकर विलास करने की अवस्था उनकी नहीं है। इसलिए सौमित्र के चरित्र ने इन्द्राणी वगैरह को और भी आकर्षित किया। सौमित्र के मुख से सुना हुआ उसका नाटकीय इतिहास उन्होंने और भी बहुतों से फिर से सुना है। खास तौर पर वहाँ की जनता के श्रद्धेय लामा साहब के पास सुना है। उनके मतानुसार सौमित्र तो देवता है।

देवता है या नहीं, यह तो नहीं पता, लेकिन इन्द्राणी और सुहास ने उसे मित्र के रूप में ही ग्रहण किया। आवेग से सौमित्र की आँखें नरम हो गईं।

इतने दिन अविराम काम-काज में डूब कर अपने आपको भुलाना चाहा, सुहास और इन्द्राणी के सहचर्य ने उसको नये जीवन का स्वाद चखा दिया है। शनिवार की रात के क्षणिक परिचय को उसने स्थायी

प्रतिष्ठा देनी चाही। वह इनके मूल्यवान बन्धुत्व को खोना नहीं चाहता। सौमित्र ने यह बात बार-बार उन्हें बताई। सुहास मानो नये सिरे से सौमित्र को प्यार करने लगा। वह सहज ही, शीघ्र ही विचलित हो जाने वाला मनुष्य है, तिस पर सौमित्र के विषय में सुनी हुई कहानी ने उसे अभिभूत कर डाला।

मित्र के लिए इतना त्याग! सौमित्र ने जो कुछ कहा उसमें उसे ज़रा भी ज्यादती नहीं लगी। अपने को बड़ा कह कर ज़ाहिर करने की इच्छा नही है, तब भी सुहास समझ गया कि सौमित्र यथार्थ में हृदयवान है, यथार्थ में मित्र-वत्सल है। दार्जिलिंग के ऐसे एकाकी वातावरण में वे लोग ऐसे ही हृदय का सानिन्ध्य चाहते हैं। इसके पहले भी उन्होंने बहुत से लोगों से बहुत-सी बातें सुनी हैं। अमल वगैरह को छोड़कर बाकी सभी लोग मनुष्य के रूप में सौमित्र की श्रद्धा करते हैं यह उन लोगों को जानना बाकी नहीं रहा। लामा साहब तो सौमित्र के चरित्र पर मुग्ध हैं। क्या ऐसा भी आदमी होता है? इतना परोपकारी? उनकी लड़की वीना की विपदा में सौमित्र के अलावा और किसने उनकी सहायता की थी? उनके रिश्तेदारों ने भी नहीं।

और वीना तो कृतज्ञता से भरी हुई है। उसके पति राई ने भी सारी घटना सुनाई है। जो बात सौमित्र ने संकोच में आकर आसानी से नहीं कही और अपने को छिपा कर रखा, राई ने वह बात भी बता दी। वीना वगैरह चुपके से भाग कर उनके पास वाले मकान में ही रहते हैं। पति-पत्नी बहुत ही सुखी हैं। बीना उम्र में तीन साल बड़ी है। छिप कर रहते हुए आज उन्हें दो साल हो गए। फिर भी बाकायदा अनुष्ठान करके शादी करने में दो साल की देरी है। ऐसे मामले आश्चर्य में डाल देते हैं। फिर इस घटना को लेकर इन्द्राणी ने अपनी मगजपच्ची नहीं की। इस अंचल में ऐसी ही प्रथा प्रचलित है। बीना से ही सुना है कि बहुत से लोग तो लड़के-लड़की हो जाने के बाद ही अनुष्ठानिक विवाह करते हैं।

इन्द्राणी ने इनके समाज की इन बातों की तारीफ की है। जीवन में प्रेम को सहज-भाव से लेते हैं। और उसे स्थान देते हैं। इसके कारण अपमान की यन्त्रणा से किसी भी लड़की को अकाल-मृत्यु का या कोई दूसरा आत्महत्या का मार्ग नहीं अपनाना पड़ता। इन्हीं सब बातों के प्रसंग में उन्होंने सौमित्र की बात उठाई थी। सब सुन सुना कर सौमित्र के प्रति उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई।

सौमित्र ने उन लोगों को सब कुछ बताया है। अपने जीवन के घात-प्रतिघात, द्वन्द कुछ भी नहीं छुपाये। उसे अपने जीवन को खूब अच्छी तरह उपभोग करने की बहुत आकांक्षा थी, सबके बीच में बने रहने की, लेकिन उसके जीवन में ये सब जो घटनाए घट गई उसके बाद से वह अकेला ही रह रहा है। उसका जीवन बहुत सी नाटकीय घटनाओं के बीच से चलता रहा है। अथक कामकाज में उसने अपने आपको डुबो रखा है। सब कुछ भूल जाना चाहता है वह। लेकिन सुहास और इन्द्राणी की मित्रता ने उसे बहुत दिन से भूली हुई दुनिया का स्वाद फिर से चखा दिया है। इस सुखी-दम्पत्ति के जीवन में उसने स्थान पाने की इच्छा की है।

मित्रता के आवेग से सुहास का मन भी द्रवित हो गया है। दोनों ही क्रमशः परस्पर बन्धुत्व की कामना से अधिक घनिष्ट हो गए। सुहास और इन्द्राणी के सन्तान-विहीन दाम्पत्य जीवन में सौमित्र के स्नेह और मस्ती भरे जीवन ने उनमें प्राण संचारित कर दिए।

दार्जिलिंग में उनका परिचय कुछ कम नहीं। बंगाली तो हैं ही। उनके अलावा खास तौर पर वीना वगैरह, घाल परिवार, लेकिन सौमित्र के साथ नई मित्रता का उन्होंने अपने मतलब से ही सादर आमन्त्रित किया।

वह लोग आपस में बहुत गहरे रूप से प्यार करने लगे।

सुहास और इन्द्राणी के लिए सौमित्र मानो किसी दूसरी दुनिया का संवाद ले आया। उनके दिन हवा की तरह उड़ने लगे। कब वे

लोग बिल्कुल घनिष्ट हो गए, यह उन्हें स्वयं भी पता न चला। सौमित्र के बगैर सुहास नहीं रह पाता और सुहास के बगैर सौमित्र। लेकिन हठात् सुहास ने अहसास किया कि कब चुपचाप इन्द्राणी के साथ भी सौमित्र की एक मैत्री हो गई है कि उसे ठीक मित्रता नहीं कहा जा सकता। सुहास उसको साफ-साफ नहीं समझ पा रहा है, लेकिन उसे कैसा अजीब सा लगता है। बात करते-करते अचानक रुक कर परस्पर एक दूसरे की तरफ ताकते रहना, किसी न किसी बहाने एकान्त में बात करना, यही सब सुहास और सहन नहीं कर पा रहा था।

इन्द्राणी तो इस बात के इशारे से ही जल उठी।

"प्रमाण ?" उसने बाकायदा साफ-साफ पूछा।

"काहे का प्रमाण, मैं सब समझता हूँ।"

"या तो कुछ नहीं समझते या जरूरत से ज्यादा समझते हो। मैं किसी भी दूसरी तरफ अपना दिल लगाने की बात सोच नहीं सकती। अच्छा ठीक है, उसका नाम बताओ।"

सुहास सौमित्र का नाम उच्चारण नहीं कर पाया। वह क्या सुहास का मित्र नहीं है ? था, लेकिन अब ? वह उसकी बात का जवाब दिए बगैर दूसरे कमरे में चला गया।

इन्द्राणी की इच्छा हुई कि सुहास को अपनी नफरत भरी तेज नजरों से फूंक दें। अपनी औरत से ऐसी बात करते हुए शर्म भी नहीं आई। इन्द्राणी ने मन ही मन सोचा। लेकिन सुहास के मन का काँटा किसी भी तरह से नहीं निकला। सबसे बड़ी मुश्किल उसकी नौकरी को लेकर हुई। ऐसे टूर की नौकरी, जिसको पहले वह अपना भाग्य समझता था, अब उसे किसी भी तरह अच्छी नहीं लग रही। सिर्फ, टूर ही क्यों, अब तो वह घर से भी किसी तरह निकलना नहीं चाहता। अगर घर लौट कर देखे कि सौमित्र और इन्द्राणी घनिष्ट भाव से गप्पें कर रहे हैं तो.....?

दिन की उसे चिन्ता नहीं होती। उस समय तो सौमित्र के आने

की भी सम्भावना नहीं होती, लेकिन शाम के बाद जब ठीक नियमानुसार सौमित्र आकर हाजिर हो जाएगा और इन्द्राणी रोज की तरह पहले पहल तो निःस्पृह भाव से बैठ जाएगी फिर धीरे-धीरे एकदम घनिष्ठता के साथ बात करने लगेगी तब ?

यह बात और भी बढ़ गई। सौमित्र की बीमारी के समय 'उसे देखने वाला कोई नहीं है' के बहाने जब इन्द्राणी को उसकी कोठी में जाना ही पड़ता था।

सुहास को विश्वास नहीं होता कि इन्द्राणी सौमित्र को प्यार करती है। लेकिन प्यार न होने पर भी मोह तो है, एक सर्वनाशी मोह। सौमित्र के लिए इन्द्राणी को एक सर्वग्रासी आकर्षण पैदा हो गया है लगता है, उससे और उसका छुटकारा नहीं।

सुहास को इस पर विश्वास नहीं हो रहा था, लेकिन विश्वास लिए बगैर अब वह जैसे रह भी नहीं पा रहा हो। सुहास ठीक समझ रहा है धीरे-धीरे उसका स्वभाव ही कैसा-सा बदल गया है। ऐसे शक से वह चिड़चिड़ करता रहता है जिसकी पहले वह कल्पना भी नहीं कर सकता था, लेकिन चेष्टा करने पर भी वह इस सन्देह को मन से मिटा नहीं पा रहा है।

आज स्टेशन क्लब में उसकी मीटिंग थी। जरूरी मीटिंग। सेक्रेटरी ने बार-बार फोन करके उसको बुलाया था। उसने आफिस से लौट कर इन्द्राणी को यह बात बताई है। उसकी इच्छी थी कि वह लोग आज बाहर ही खाना खाएं। वह स्टेशन क्लब का काम पन्द्रह मिनट में खत्म करके आ जाएगा। लेकिन नहीं, इन्द्राणी नहीं जा सकती। उसका निमन्त्रण है। अनेक तर्क और युक्ति से भी वह इन्द्राणी को मना नहीं सका और सुहास को भी मीटिंग में जाने के बहुत जल्दी मची। उसे फोन करके बलेन घोष ने कहा है।

काफी गुस्से से भर कर सुहास घर से चला गया। इन्द्राणी के जिद करने पर वह कुछ भी नहीं कर सकता है। लेकिन गाड़ी स्टार्ट नहीं

हुई। काफी देर तक चेष्टा करने पर भी गाड़ी नहीं चली, यह देखकर उसने फोन कर दिय कि वह नहीं आ सकेगा। आखिर उसने निश्चय कर ही लिया कि वह आज नहीं आएगा। नहीं आएगा, यह सोच कर सुहास थोड़ा आश्वस्त हुआ।

अच्छा ही हुआ! शरीर भी ठीक नहीं है। उसके अलावा मन की बात तो न ही बताई जाए तो अच्छा है। गैरिज बन्द करके घर की तरफ पाँव रखते ही सोने के कमरे में बिजली जलती देख सुहास ज़रा अवाक् रह गया। मामला क्या है?

इन्द्राणी गई नहीं क्या? चाँदमारी के सुविमल बाबू के घर में उनकी लड़की का आज आशीर्वाद था। आज उसी के निमन्त्रण में जाने की बात थी। इन्द्राणी ने तो सुहास को यही बताया था। वो लोग बहुत-बहुत करके कह गए हैं। इन्द्राणी के नहीं जाने से काम नहीं चलेगा, फिर?

इंद्राणी की तबियत तो खराब नहीं हो गई। कितने दिन से ही वह इन्द्राणी का पीला मुंह देख रहा है। दोनों के बीच में एक तनाव और झगड़ा चल रहा है, इसलिए सुहास की पूछने की इच्छा भी नहीं हुई। सुहास ने इसकी ज्यादा चिन्ता भी नहीं की, लेकिन आज कहीं ज्यादा खराब तो नहीं हो गई।

सुहास सीधा सोने के कमरे में घुस गया। इन्द्राणी नहीं मिली। तब हो सकता है कि वो इस बीच में चली गई हो। अचानक दिखाई दिया कि खाने के कमरे में बिजली जल रही थी।

लकड़ी के फर्श पर जूते की आवाज करता हुआ वह खाने के कमरे में घुस गया। इन्द्राणी खाना खतम करके चेयर पर बैठी एक किताब पढ़ रही है। पास ही फायर प्लेस की आग की आभा उसके एक तरफ के गाल पर और रूखे बालों पर पड़ रही है। सुहास का मिजाज चढ़ गया।

इसका मतलब है इन्द्राणी ने घर पर ही खाना खा लिया। उसे

सुहास से झूठ बोलने की क्या जरूरत थी भला ? आजकल यही चल रहा है। सारा सम्पर्क ही मानों झूठा हो गया है। आज खास करके इन्द्राणी ने ऐसा व्यवहार क्यों किया ? सिर्फ सुहास को टरकाने के लिए ? सुहास इन्द्राणी को बाहर ले जाना चाहता था क्या इसलिए ? सुहास बिल्कुल चिढ़ गया।

"क्यों ? चले क्यों आए ?" इन्द्राणी किताब मोड़ कर उठ खड़ी हुई।

सुहास ने जवाब नहीं दिया।

"क्या हुआ तुम्हें ? चले क्यों आए ?"

"कुछ नहीं, नहीं गया। लेकिन तुम जो घर पर हो ? निमन्त्रण में नहीं गई ?"

"नहीं मैं भी नहीं गई।"

"क्यों ? मुझे तो कहा था तुम्हें जाना ही होगा। किसी भी तरह से यह प्रोग्राम नहीं बदल सकतीं, नहीं तो वह लोग बहुत दुख मनाएँगे पहली लड़की की शादी है। उसके आशीर्वाद में न जाने से नहीं चलेगा और न जाने क्या-क्या ? फिर ?"

"ठीक है, सब बात ठीक है ! सचमुच न जाकर बहुत बुरा किया। लेकिन क्या करूँ, बताओ ? मैं तो निरुपाय हूँ। मिसेज मजूमदार ने फोन करके बताया कि वह नहीं जा पाएँगी। उसके अलावा बारिश आ गई, इसलिए मैं भी नहीं गई।"

"वाह ! बहुत अच्छी बात है।"

"बहुत अच्छी बात क्यों है ?"

"मुझे तो कह सकती थीं।"

इस दफा इन्द्राणी बहुत गुस्सा खा गई, सोने के कमरे में घुसते-घुसते बोली—"कब बोलती ? जाने का तो सब ठीक ही था। आखिरी मिनिट पर मिसेज मजूमदार ने कहा·····।"

"रहने दो।"

"क्यों ?"

"ऐसे ही।"

सुहास साफ-साफ समझ गया कि इन्द्राणी झूठ बात कह रही है। उसकी जाने की कोई मर्जी नहीं थी। निमन्त्रण भी सच था या नहीं क्या पता। बारिश तो थोड़ी ही होकर रुक गई और मिसेज मजूमदार की बात तो मनगढ़न्त बताई हुई है। लेकिन साफ-साफ प्रमाण न मिलने पर कुछ बोल नहीं पाया। धीरे-धीरे टाई खोल कर बिस्तर पर फेंक दी।

"तुम नहीं गए ?" एक मेगजीन उठा कर पढ़ते-पढ़ते इन्द्राणी ने प्रश्न किया।

"ना..."

"क्यों ? बलेन घोष ने जाने के लिए इतना-इतना कहा था ?"

बिना बात बोले सुहास चुप कर गया। इन्द्राणी ने फिर पूछा, "मीटिंग नहीं हुई ?"

"नहीं।"

ठीक इसी समय फोन की घंटी बज उठी। सुहास की इच्छा नहीं हुई उठने की। जरूर क्लब से ही फोन आया होगा। अच्छी मुसीबत है : चलो छोड़ो। लेकिन इन्द्राणी ने जल्दी मचाई।

"जाओ न ! देखो कौन बुला रहा है ?"

आखिर सुहास ने उठ कर फोन पकड़ा।

इन्द्राणी का साहस देखकर वह अवाक् रह गया। सौमित्र का फोन होगा। वह जरूर जानता है कि आज मैं घर पर नहीं रहूँगा, इसलिए इस समय फोन किया है। लेकिन सुहास के सामने इन्द्राणी ने अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए ही सुहास को फोन पकड़ने के लिए कहा है। मानो सौमित्र के फोन से उसका कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। मानो इस मामले में वह सुहास से भी ज्यादा निरासक्त है। लेकिन नहीं, फोन पर जिसकी आवाज सुनाई दी वह सौमित्र नहीं,

मिसेज मजूमदार थीं।

"हलो!"

"मिस्टर सेन, इन्द्राणी है?"

"हाँ, पकड़िए! आप लोग निमंत्रण में नहीं गए?"

"कैसा निमन्त्रण?"

लगता था सुहास का दम घुट जाएगा। पकड़ लिया। इन्द्राणी का सारा झूठ आज पकड़ा गया, लेकिन यह सत्य उसके सामने उद्घाटित न होता तो वह खुश ही होता। धीरे-धीरे सूखे होठों को चाटते हुए बोला—"वाह! चाँदमारी के सुविमल बाबू के घर?"

"ओह हाँ। छिः छिः, देखिए तो मैं भी कैसी भुलक्कड़ हूँ? सच्ची मैं भी सारा दिन अन्यमनस्क रहती हूँ। इसलिए तो इन्द्राणी को कह रही थी कि उन लोगों ने आदमी भेजा है। नहीं जाना ठीक नहीं होगा।"

मिसेस मजूमदार के ऊपर बहुत गुस्सा आया सुहास को, सामने होती तो सुहास उसे मार बैठता।

"अच्छा उसे बुलाता हूँ। आप ठहरिए।" भारी गले से सुहास ने कहा।

"धन्यवाद—"

फोन रख कर के सुहास इन्द्राणी के पास चला आया।

"तुम्हारा फोन है।"

इन्द्राणी ने बिना बोले फोन उठा लिया। वह अब तक सुहास को देख रही थी, उसका प्रतिक्षण बदलता हुआ भाव।

लेकिन यह भाव सोचते-सोचते सुहास को और भी खराब लगने लगा। इस सफेद पत्थर की मूर्ति को तोड़-मरोड़ कर क्या वह नहीं देख सकता कि इसके अन्दर क्या है? इन्द्राणी ने झूठ बात नहीं कही, सुहास झूठे शक में ही दिन-रात अपने को क्षत-विक्षत कर रहा है, लेकिन शायद सुहास यह सब और अधिक सहन नहीं कर पाएगा। थोड़ा बहुत

अब समझने की जरूरत है।

सुहास को कुछ एक महीने पहले की बात याद आ गई। जब उसे इन्द्राणी के प्यार में बिन्दु-मात्र भी संशय न था। ऐसा कितनी ही बार हुआ है कि इन्द्राणी ने जो कुछ कहा है वह किया नहीं, लेकिन तब ऐसी जलन, ऐसी आग उसे महसूस नहीं होती थी। उसके प्रति अगर किसी ने भी ज्यादा ध्यान दिया है, या उसकी ओर ज्यादा देखा है, तो शायद सुहास ने मन ही मन थोड़ी ईर्ष्या जरूर अनुभव की है। बस इतना ही, लेकिन वहाँ वेदना कहाँ थी ?

इन्द्राणी तो इससे सुहास को और भी ज्यादा प्यार करने लगी थी। उसके शरीर पर आ गिरी थी, और उसका सारा शरीर निरन्तर चुम्बनों से भर दिया था, और बार-बार यह कहा था, "तुम पागल हो! बहुत पागल! मेरा इससे क्या बनता बिगड़ता है? मैं लोगों को अच्छी लगूं तो इससे क्या? मुझे तो वे अच्छे नहीं लगते! तुम्हें क्या नहीं पता कि तुम्हारे अलावा मैं किसी को भी प्यार नहीं कर सकती। किसी को नहीं।"

इन्द्राणी ने तब उसे कितने आदर और प्यार की बातों में डुबो दिया था।

सुहास अपने व्यवहार पर स्वयं ही लज्जित हो उठा।

लेकिन वह और एक दिन था। और आज ? आज सब कुछ कितना बदल गया है। कितना ज्यादा बदल गया।

पूरा नाटक मानों खतम होकर नया नाटक चल रहा है। नए नाटक का अन्तिम भाग अभी होना बाकी है। लेकिन सुहास का दम घुटने लगता है। सोचने से भी डर लगता है। सुहास अच्छी तरह समझ गया है कि इन्द्राणी उसको और प्यार नहीं करती। नहीं तो सौमित्र को कैसे.....? तो भी थोड़ा समझने की जरूरत है।

थोड़ी देर बाद ही फोन रख कर इन्द्राणी कमरे में आई। सुहास ने इजी चेयर पर सोने की तैयारी करते हुए पूछा—

"क्या हुआ ? जाओगी नहीं ?"

"नहीं !"

"क्यों ?"

"क्या जरूरत है ?"

"पहले ही क्या जरूरत थी ?"

"फिर भी सोचा था, तुम तो रहोगे नहीं। मीटिंग मे चलो जाओगे। इसलिए उस समय घूम आती। लेकिन अब तो तुम आ गये हो।"

सुहास की हृदय-गति मानो बन्द हो जाएगी। आवेग से वह उठ बैठा। फिर स्थिर दृष्टि से इन्द्राणी की तरफ देख कर बोला, "मैं आ गया हूँ इससे तुम्हें क्या ?"

"इसके मायने ?"

"इसके मायने तुम तो और मुझे प्यार नही करती।"

लेकिन इस बात से इन्द्राणी चौंकी नहीं ! सुहास की तरफ देखे बगैर धीरे-धीरे पूछा, "तुम क्या पागल हो ? यह तुम्हारे मन में कैसे उठा कि मै तुम्हें प्यार नही करती ?"

"इसका क्या एक कारण है ?"

"फिर भी, जितने हैं सुनाओ।"

"मैं बोल नहीं पाऊँगा।"

"वाह, तब तो तुम्हारा यह दोष लगाना अन्याय है।"

"अन्याय ? ठीक कहती हो।"

"क्या ठीक कहती हूँ ?"

"इन्द्राणी मुझे पागल मत कर देना। मैं तुम्हें ठीक से नही समझा सकूंगा, लेकिन क्या मै नहीं समझ पाऊँगा ?"

"तुम....."

"बोलो इन्द्राणी ! सच है या नहीं ? मेरे मन में जो हो रहा है, जो दिन-रात मेरे मन को तिल-तिल करके जला रहा है, उसी संदेह से

तुम मुझे बचाओ ! तुम कहो कि मेरा यह विश्वास, यह संदेह, सब झूठ है।"

"वाह अच्छे पागल हो ! कहाँ और किस पर तुम्हें शक है ? पहले यह बोलो।"

"कैसे ? हर मामले में। तुम्हारे व्यवहार में, बातचीत में, हर बात में। उसके अलावा....."

सुहास सौमित्र का नाम नही बोल पाया ! उस नाम के उल्लेख मात्र से उसे आग लगने लगती है। इसके अलावा उसे कोई प्रत्यक्ष प्रमाण तो मिला नहीं, सिर्फ अनुमान है। सब कुछ ही तो अनुमान है।

"मेरा व्यवहार !" इन्द्राणी को आश्चर्य हुआ।

"हाँ याद करो तो ! हमारी विवाह वर्ष-गांठ की रात तुमने कैसा व्यवहार किया था ? सारी रात तुमने कैसी खराब कर दी थी।"

"वह तो तुमने ज्यादा ड्रिंक कर लिया था, इसलिए मुझे उसकी गंध बहुत बुरी लग रही थी।"

"ठीक कह रही हो क्या ? उस दिन क्या मैने पहली बार ड्रिंक किया था ? तुमने क्या मुझे पहले नहीं कहा कि मै जरा टिप्सी हो जाऊँ तो मै तुम्हें और भी अच्छा लगता हूँ ?"

"कहने से क्या हुआ ?"

"होता तो कुछ नहीं, लेकिन कहा था और सिर्फ एक बार नही, बार-बार कहा।"

"हो सकता है।"

"हाँ, और तब क्यों कहा था, यह भी जानता हूँ।"

"क्यों ?"

"पहले तुम मुझे प्यार करती थी, अब प्यार नहीं करती।"

"क्या कहते हो ?" इन्द्राणी के स्वर में कोई जोर नहीं था।

"मैं ठीक ही कह रहा हूँ इन्द्राणी। तुम मुझे और प्यार नहीं करतीं। नहीं तो रोज रात को तुम मेरे साथ कैसा व्यवहार करती हो.

बोलो तो ?"

"क्यों ? दोनों जने क्या दो जगह रहते है ?"

"लगभग तुम्हें छूने से तुम चिढ़ जाती हो।"

"कुछ दिन से मेरी तबियत ठीक नहीं है, तबियत बहुत गिरी-गिरी सी लगती है।"

"डाक्टर को दिखाओ ! इसी वजह से क्या तुम पति के साथ सम्पर्क नहीं रखोगी ? तबियत ठीक करने के लिए डाक्टरी शास्त्र में कुछ दवाइयां भी लिखी है।"

"लेकिन अगर कहूँ कि मेरा मन भी ठीक नही है तो ?"

"क्यों ? इन्द्राणी क्यों ?" उसके सामने आकर जमीन पर बैठ कर इन्द्राणी की गोद में सुहास ने सिर रख दिया।

"मन क्यों ठीक नहीं ? मैं तो हूँ इन्द्राणी ! मेरा प्यार क्या तुम्हारी सब उदासी को बहा नहीं सकता ? तुम्हारा....."

"पागल !" उसके बालों में हाथ चलाते-चलाते इन्द्राणी बोली।

अचानक उसकी आँखों से आंसू गिरने लगे।

× × ×

कैपिटल मे अचानक वही फिल्म आई।

इन्द्राणी ने ही प्रस्ताव किया, "चलो चलें ! पुस्तक अच्छी है।"

"किसकी लिखी हुई ?"

विक्टर ह्यूगो की "ला मिजरेबल्स" किताब है। तुमने नही पढ़ी क्या ?"

"नहीं मैंने नही पढ़ी। तुम्हारी तरह अगर किताबी कीडा होता तो बहुत अच्छा होता।"

"पढ़ने के अलावा और मेरे पास काम ही क्या है ? मै इतनी अकेली हूँ। तुम्हारी तो नौकरी है।"

"सचमुच इन्द्राणी ! नौकरी है, इसीलिए आज मै नहीं जा पाऊँगा। मेरी आज आफिस में ड्यूटी है।"

"आफिस मत जाना !"

"असम्भव ! मैं कन्वीनर हूँ....."

"वाह ! सोचा था जरूर जाएंगे, एक ही दिन तो....."

"तुम चली जाओ न....."

"अकेले ?"

"उसमें क्या हुआ ? पास ही तो है।

"नहीं ....."

"नहीं, नही ! जाओ ! सच्ची अकेले-अकेले क्या करोगी ? जाओ सिनेमा जाने से थोड़ा समय कट जाएगा।"

"नहीं !" मन-मन में खुशी होते हुए भी सुहास ने इन्द्राणी पर और भी जोर डाला। लेकिन इन्द्राणी किताब हाथ में लेकर जिस तरह दिवान पर लेट गई उससे लगा कि अब वह नही उठेगी।

अचानक सुहास को कैसी सी खुशी होने लगी, मानो कोई खोई हुई चीज मिल गई हो। गाना गुनगुनाते हुए उसने कपड़े बदले, फिर जाने के पहले यथा रीति इन्द्राणी के पास आया।

"वाह ! कब से खड़ा हूँ ? देरी नहीं हो जाएगी ?"

"जाओ।" इन्द्राणी ने किताब पढ़ते-पढ़ते ही उत्तर दिया।

"वाह रे !"

"ओह !" अचानक उठ कर सुहास के माथे पर इन्द्राणी ने एक चुम्बन ले लिया।

उसे चिपटा कर सुहास ने उसके होठों को जोर से चूम लिया। फिर पागल की तरह उसके गले, कान, छाती पर सहस्रों चुम्बनों से उसे भर देना चाहा।

"अरे ! छोड़ो।"

"नहीं।"

"वाह ! तुम्हें मीटिंग में देर नहीं हो जाएगी ?"

"होने दो।"

"मेरा सारा लिप्स्टिक खराब कर दिया।"

"बहुत अच्छा किया ! उसके अलावा तुम तो कहीं जा नही रहीं।"

"नहीं।"

"फिर ?" अपने बिखरे हुए बालों को ठीक से ब्रश करके अपने को शीशे में देख कर सुहास चला गया।

इन्द्राणी कुछ देर तक खड़ी रह गई। फिर धीरे-धीरे सामने के छोटे से बाग में चली गई।

× × ×

शाम हो चली थी। हठात् सामने कन्चनजंगा की बर्फ से ढकी हुई सफेद चोटी झक-झक करने लगी। उस तरफ देख करके इन्द्राणी की दोनों आँखें पानी से भर उठीं। कैसा अकथनीय, अपार्थिव सौन्दर्य है। अभी सूर्यास्त हो जाएगा। दिन समाप्त होने पर यह प्रकाश नाना रंगों से कंचनजंगा को जैसे स्नान करा देगा। कभी गुलाबी, कभी सुनहरी, और कभी आग की आभा से उसी सफेद बर्फ के ऊपर गिर कर इन्द्राणी की सब चेतना को मानो ढँक देगा।

सब कुछ वैसा ही है।

प्रकृति के राज्य में मानो कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। युग-युग तक कंचनजंगा की चोटी पर यही नाना रंग। उसमें शायद कोई परिवर्तन नहीं होता। एक समानता में भी वैचित्र्य है। हजार साल पहले भी शायद किसी नारी ने ऐसा ही सूर्यास्त देख कर स्वर्गीय आनन्द प्राप्त किया होगा। लेकिन मनुष्य का मन.....? उसमें इतना परिवर्तन क्यों होता है ? सिर्फ मन में ही क्यों ? प्यार में भी। प्यार का भी जन्म और मृत्यु होती है। क्या नहीं होता ? तो क्या अब भी इन्द्राणी सुहास

को ही प्यार करती है। ठीक पहले की तरह ? वह ठीक समझ नहीं पा रही। लेकिन अगर ऐसा होता तभी वह सब तरह से खुशी होती। शायद क्यों ? जरूर ही। लेकिन क्यों ? इन्द्राणी यह ठीक से नहीं सोच सकी। प्रकृति के बंधे हुए नियमों की तरह उसका हृदय भी अगर नियम माफिक चलता तो आज वह समस्त द्वन्द्व और यन्त्रणा से छुटकारा पा जाता।

लेकिन हृदय तो प्रकृति नहीं है, मशीन भी नहीं। इसीलिए शायद वह नियम के अनुसार नहीं चलता है, नित्य परिवर्तन नहीं होने पर भी.....।

इन्द्राणी चलना भी भूल गई। कंचनजंगा की तरफ एकटक देखती हुई पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रह गई।

कितनी देर बाद उसका ध्यान टूटा। एक लम्बी सांस छोड़ कर, शाल अच्छी तरह लपेट कर, घर के अन्दर आकर, आधी किताब फिर से शुरू कर दी। इस पृथ्वी पर उसका शायद वही एक मात्र आश्रय है।

हठात् टेलीफोन बज उठा। कुछ क्षण बाद काची ने खबर दी कि फोन उसी का है।

"किसका है ?"

"लेवंग से"

शायद उसकी हृदय-गति अचानक बन्द हो जाएगी। लेवंग से कौन उसे बुला सकता है। लेकिन फिर क्यों ? वह तो बुधवार को सभी कुछ समाप्त कर आई थी। फिर ?

खूब धीरे-धीरे चल कर इन्द्राणी ने फोन उठाया, 'हलो !'

"इन्द्राणी !" दूसरी तरफ से सौमित्र की भारी आवाज सुनाई दी।

"क्या कर रहीं थी ?"

"कुछ नहीं।"

"बिल्कुल कुछ नहीं ?"

"किताब पढ़ रही थी।"

"ओह ! इन किताबों से मुझे ईर्ष्या होती है ।"

"क्यों ?"

"वह तुम्हारा कितना ध्यान बँटा लेती हैं ।"

बिना उत्तर दिए इन्द्राणी चुप रह गई ।

"इन्द्राणी !"

"बोलो ?"

'तुमसे मिलूंगा ।"

"क्यों ?"

"मिलने के अलावा और उपाय ही क्या है ? दो दफे फोन किया, तुमने उठा कर फिर रख दिया, ऐसा क्यों किया इन्द्राणी ?"

"उचित नहीं है इसलिए । मुझे और फोन मत करना ।"

"क्या पता ! मैं अब उचित और अनुचित की बात और सोच भी नहीं सकता ।"

"सोचना पड़ेगा ।"

"मेरा सब एकाकार हो जो गया है इन्द्राणी, मैं मित्रता जानता हूँ लेकिन वह मित्रता अब सीमा पार कर गई है ।"

कोई उत्तर दिए बगैर इन्द्राणी चुप हो गई । वह क्या स्वयं भी नहीं जानती कि मित्रता सीमा पार कर गई है । ऐसा नहीं होता तो वह उसमें छेद करने की इतना कोशिश क्यों करती ? इन्द्राणी ने बहुत मुश्किल से अपने आवेग को रोका ।

"पता नहीं, तुम्हें शायद ज्ञान है, इसलिए हो सकता है कि तुम सहन कर सकती हो, लेकिन मुझे तो ऐसी अनुभूति पहले कभी नहीं हुई, ऐसा पहली बार ही हुआ है । बिल्कुल नया अनुभव । मैं और नहीं सहन कर पाऊँगा इन्द्राणी ! मैं और सहन नहीं कर पा रहा ।"

"नहीं !"

"बोलने दो ! मुझे अपने पास आने दो ! मुझे जिंदा रहने दो !"

"नहीं !"

"नहीं कहने से नहीं होगा, मै कोई बात नहीं सुनूंगा।"

"फोन रख रही हूँ।"

"रख दो ! लेकिन मैं तुमसे मिलूंगा, इन्द्राणी ! सेन कहाँ है ?"

"मीटिंग में गए हैं।"

"ओह, सुनो ! कैपिटल का टिकट मंगाया है, यू मस्ट कम विद मी।"

"असम्भव !"

"असम्भव क्यों है ? मैं सेन को कहूँगा कि उसके लिए भी टिकट मँगाया था, लेकिन वह तो है नहीं।"

"रहने पर भी नहीं जाते और मैं भी नहीं जाऊँगी।"

"प्लीज इन्द्राणी !"

"नहीं सौमित्र ! नहीं, मैं नहीं जा पाऊँगी।"

"इन्द्राणी ! यू बिल हैव टू.....अच्छा मैं आता हूँ।'

"सुनो, सुनो ! मत आओ। मैं नहीं जाऊँगी। हलो.....।"

दूसरी तरफ से फोन कट गया। फोन रख कर कुछ देर तक खड़ी रही। फिर बाहर निकल आई। कंचनजंगा उसे खींच रहा है। सौमित्र की गाड़ी की आवाज सुन कर भी इन्द्राणी जरा भी नहीं हिली। जैसे खड़ी थी वैसे ही खड़ी रही।

"हलो मैडम, अभी तक यहीं हो ? वाह, नॉट यट रेडी ?"

"क्यों रेडी होऊँ ?"

"समय और नहीं है।"

"मै नहीं जाऊंगी।"

"नहीं !"

"नहीं-नही, हाँ कहो। सौमित्र ऐसा लड़का नही है। जब आया हूँ तो जबर्दस्ती ले जाऊँगा।"

"जबर्दस्ती ?"

"हाँ वही।"

"अच्छा तो जबर्दस्ती करो।"

"कर ही तो रहा हूँ ! तुम्हारे ऊपर मेरा एक ही तो जोर है। नहीं है क्या ?"

"है ! लेकिन सौमित्र·····"

"लेकिन नहीं ! आज जाना ही पड़ेगा। तुम्हारे साथ आज बहुत सी बातें करनी हैं, और यह फिल्म ! जानती हो मैं तो सोच भी नहीं सका, यहाँ आएगी। विलायत में था तब देखा था।"

"फिर और जाकर क्या होगा ?"

"तुमने तो नहीं देखी।"

"देखी नहीं, फिर भी किताब पढ़ी है।"

"तुम तो पढ़ोगी ही, तुमने कोई किताब बिना पढ़े छोड़ी है ?"

"क्या कहते हो। मेरे जीवन में और करने को ही क्या है ?"

"इन्द्राणी चलो, देरी मत करो। चैंज योअर ड्रेस। मैं वेट कर रहा हूँ।"

"लेकिन सौमित्र·····"

"लेकिन वेकिन नहीं।"

"सौमित्र तुम समझते क्यों नही ?"

"मैं समझता हूँ इन्द्राणी, लेकिन तुम क्या मेरी बात बिल्कुल ही नहीं सोचोगी।"

इन्द्राणी की तरफ सौमित्र ने स्थिर दृष्टि से ताका। इन्द्राणी ने दोनों हाथों से मुख ढँक लिया।

×××

जब सुहास लौट कर आया तब आठ भी नहीं बजे थे। आते समय गैलनरी से ढेर सारी पेस्ट्री खरीद लाया था। इन्द्राणी को बहुत अच्छी लगती है इसीलिए, उसके साथ-साथ और भी प्यारी चीज फ़ाईड चिकिन।

लेकिन इन्द्राणी कहाँ है ? सब दरवाजे धक्के देकर खोल डाले

लेकिन नहीं, किसी भी कमरे में इन्द्राणी नहीं।

"कांची !" सुहास ने चिल्ला कर पुकारा।

"जी साब···"

"मेमसाहब कहाँ है ?"

"मेमसाब !"

"हाँ।"

"बाहर गिया।"

"बाहर गिया ! कब ? कहाँ ?"

कांची से पूछना बेकार था। जाने से पहले नौकर-चाकर को बताना इन्द्राणी के स्वभाव में नहीं था।

कितनी देर सोता रहा यह पता नहीं ! घर के नीचे गाड़ी रुकने की आवाज हुई। उसके बाद ही कालिंग बैल बजी। रात बहुत हो गई थी। दार्जिलिंग मे सर्दियों के दिनों में नौ बजे भी कुछ कम रात नहीं होती। कांची ने दरवाजा खोल दिया। इन्द्राणी घर मे घुसी। उसको देख कर सुहास चौक गया।

"यह क्या तुम ? मैंने तो सोचा था···"

"हाँ मैं ही तो ! तुम किसको सोच रहे थे ?"

"तुम्ही को।" भारी स्वर से सुहास बोला।

"तो फिर इतने चौक क्यों गये ?"

इस बात का कोई उत्तर न देकर सुहास ने इन्द्राणी की तरफ एक-टक देखा। फिर खूब धीरे-धीरे पूछा। "गाड़ी मे वापिस आई ?"

"हाँ !"

"किस की गाड़ी मे ?"

"सौमित्र की।"

"कहाँ गई थीं ?"

"सिनेमा।"

"तुम तो कह रही थीं कि मैं नहीं जाऊँगी।",

"सोचा तो यही था।"

"कपड़े क्यों बदल लिए ? क्या आगे से ही ठीक था कि सौमित्र के साथ जाओगी ?"

"क्या बेकार की बात करते हो।"

इन्द्राणी रसोईघर की तरफ चल दी।

सुहास ने उसका रास्ता रोक लिया। सुहास का चेहरा थर्रा रहा था, अब तक तो वह सहज-भाव से ही बात कर रहा था, लेकिन अब मानो सारा मुखौटा हटा कर आमने-सामने युद्ध की तैयारी कर बैठा।

"बेकार की बात नहीं। तुम्हें बताना पड़ेगा कि तुम्हारे इस सब व्यवहार के क्या अर्थ हैं ?"

"रास्ता छोड़ दो, कपड़े बदलने दो।"

"ठहरो ! खाली सौमित्र के लिए ही साज न करने से भी चलेगा।"

"छिः !"

"छिः काहे की ? बोलो ! जवाब दो, उत्तर दो···"

"क्या उत्तर दूँ ?"

"मुझे कहा, 'नहीं जाऊँगी'। कितनी अनिच्छा दिखाई। फिर सौमित्र को बुला कर उसके साथ क्यों चली गई ? बोलो ?"

"सौमित्र को बुला कर ?"

"हाँ, क्योंकि पहले ही तो तुम्हारा ठीक था ?"

"तुम बहुत नीच हो···"

"नीच ! हो सकता है, लेकिन नीच तो तुमने ही बनाया है।"

"मैंने ?"

"हाँ, तुम्हें मैं नही समझ पाया।"

"समझना चाहते नहीं, इसीलिए।"

"समझना नहीं चाहता ?"

"निश्चय ही, नहीं तो मेरी बात सुने बगैर तरह-तरह की बात क्यों सोच लेते हो ?"

"सोच लेता हूँ ? क्या उसमें कोई सत्य नहीं है। सब कुछ ही क्या मेरा मनगढ़ंत है ?"

"बहुत कुछ !"

"बहुत कुछ ! लेकिन सब कुछ नहीं।"

"लगभग सब कुछ ही ! अच्छा रहने दो, मुझे जाने दो, रास्ता छोड़ो।"

हठात् सुहास की प्रबल इच्छा हुई कि वह उस स्थिर मूर्ति को आलिंगन में भींच कर पीस दे। वह देखना चाहता है कि इन्द्राणी के उस गम्भीर मुँह के भीतर क्या है ? उस पत्थर के तले में क्या है ?

इन्द्राणी ने जैसे ही उसके पास से गुजरने की कोशिश की सुहास ने उसे झटका देकर के रोक लिया। "तुम इस तरीके से बात टाल कर नहीं जा सकतीं। मेरी बात का जवाब दो। मेरे मन में आग लग रही है।"

"तो फिर आग बुझाओ, स्वयं ही उत्तर मिल जाएगा।"

'बेकार की बात-चीत छोड़ो ! सच-सच बताओ कि तुम मुझे और प्यार करती हो कि नहीं ?"

इन्द्राणी ने स्थिर दृष्टि से सुहास की तरफ ताका, उसके बाद मानो सम्मोहित होकर धीरे-धीरे बोली—"ठीक है ! सोचा था, फिर तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूँगी। मेरे बोलने की बिल्कुल इच्छा नही थी, लेकिन तुम विवश कर रहे हो·····"

"हाँ बताओ, सत्य से मैं नहीं डरता ! इस झूठ की अग्नि के सैकड़ों ज्वालाओं से तो वही अच्छा है, बोलो।"

"तो फिर सुनो। तुम्हें मैं सच्ची ही और प्यार नहीं करती।"

"नहीं !" सुहास का मन हुआ जोर से चिल्ला पड़े।

ऐसा सुनने की ही तो उसने आशा की थी, फिर ? लेकिन सोचना एक बात है और उसी निदारुण निर्मम सत्य से आमना-सामना हो जाना शायद दूसरी बात है। नहीं तो मन ही मन जिस भयंकर सत्य के लिए वह तैयार होकर बैठा था उसी सत्य के जाहिर हो जाने पर उसके मन

में ऐसा क्यों हो रहा है ? हो सकता है उसके मन के किसी कोने में छिपी हुई आशा थी कि शायद उसका सन्देह झूठा निकले। इसीलिए शायद इन्द्राणी के मुह से निकली हुई उस निर्मम बात ने उसको इतना विचलित कर दिया।

सुहास कुछ देर तक स्तम्भित हो कर बैठा रह गया। धीरे-धीरे इन्द्राणी अपने ड्रेसिंग-रूम में चली गई। कपड़े बदल कर जब वह बाहर आई सुहास तब भी वैसा ही बैठा था।

"खाने चलो···" जैसे कुछ भी नहीं हुआ हो, ऐसे भाव से इन्द्राणी बोली।

"तुम्हें एक बात कहनी है।" बहुत देर बाद सुहास बोला, मानो बहुत लम्बा रास्ता तय करके आया हो।

इन्द्राणी ने अत्यन्त धीरे सहज भाव से कहा—"बोलो!"

"मुझे बताओ, तुम क्यों मुझे प्यार नहीं करती ?"

"बताने को क्या है ? यह क्या समझा कर बताने लायक विषय है ?"

घृणा और गुस्से से सुहास का मुंह कैसा-कैसा टेढ़ा दिखाई दे रहा था। पति से यह बात कहते हुए स्त्री को लज्जा नहीं आई कि वह पति को प्यार नहीं करती ? निर्लज्जता की भी कोई सीमा होनी चाहिए। फिर भी बनावटी हँसी से अपने मुंह का भाव बदलने की उसकी इच्छा हुई।

"सिर्फ इतना कह कर ही तो बात टल नही सकती। तुम्हारे साथ मेरा जो सम्पर्क है वह क्या इतने सहज मे ही समाप्त हो जाएगा ? एक संगत कारण मैं जरूर ही मालूम कर सकता हूँ।"

बात की उपेक्षा की चेष्टा करते हुए इन्द्राणी उठ खड़ी हुई।

"नहीं ! सुनो ! मुझे बताओ।" उसका हाथ पकड़ कर सुहास ने खींचा।

"कहा तो है ! मैं अब तुम्हें और प्यार नहीं करती।"

"लेकिन क्यों ? पहले तो करती थीं, या पहले भी प्यार नहीं करती

थीं ?" सुहास को बात बोलने में भी कष्ट हो रहा था।

"उसमें तो कोई झूठ नहीं था, यह तो तुम जानते हो।"

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

"इन्द्राणी !" सुहास लगभग चिल्ला उठा।

"मत दिखाओ कि तुम नहीं समझतीं ! मैं मर रहा हूँ ! बताओ कि फिर ऐसा क्या कारण हो गया कि तुम मुझे और प्यार नहीं कर सकतीं ?"

"मुझे नहीं मालूम ? कारण मुझे नहीं पता ! सिर्फ जो सत्य है वह मैंने तुम्हें बता दिया है।"

"क्या सच है ?"

"तुम्हें मैं प्यार नहीं करती।"

"बार-बार वही संघातिक बात मत बोलो।"

"मैं तो नहीं बोलना चाहती, लेकिन तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा, इसलिए बार-बार बोलना पड़ रहा है।"

"विश्वास कर रहा हूँ, इन्द्राणी ! विश्वास कर रहा हूँ।" सुहास दोनों हाथों से सिर पकड़ कर बैठ गया।

इन्द्राणी उठ खड़ी हुई।

"सुनो मैं जानता हूँ कि तुम मुझे क्यों नहीं प्यार कर पातीं।"

"जानते हो तो पूछ क्यों रहे हो ?"

"तुम्हारी निर्लज्जता की सीमा देखने के लिए।"

"ठीक है !"

"ठीक है नहीं, जानता हूँ कि तुम मुझे प्यार नहीं करतीं, बिना कारण ही नहीं, सिर्फ इसलिए कि तुम सौमित्र को ही प्यार करती हो।"

सुहास की छाती मानो फट जाएगी। सौमित्र का नाम बोलते समय उसकी जीभ कट क्यों नहीं गई ?

सुहास स्थिर-दृष्टि से उसकी तरफ देखता रहा।

"हो सकता है।"

"हो सकता है ? क्या इतनी आसान बात है ? इतनी आसान ? मैं तुम्हारा खून कर दूँगा।"

"वही करो, मेरी भी जान छूटे।"

"इन्द्राणी !" सुहास ने उसे जोर से झँझोड़ दिया।

"हाँ सचमुच में ही ! आज और भी समझ गई हूँ कि तुम्हें प्यार ही नहीं करती, सिर्फ यह बात ही नहीं ! तुमसे नफरत है मुझे।"

"नहीं.....!"

अचानक सुहास ने उसे जोर से पीस देना चाहा और इन्द्राणी ने डर से एक चीत्कार करके दोनो हाथों से अपना मुँह ढंक लिया।

धीरे-धीरे उसे छोड़ कर सुहास कमरे से निकल गया।

इन्द्राणी ने क्या सोचा था कि सुहास उसे मार डालेगा ?

इन्द्राणी तुम क्या हो गई हो ? कितनी दूर चली गई हो। पास के कमरे में दोनों हाथों से मुँह ढँक कर सुहास रो पड़ा।

× × ×

शरीर से कम्बल लपेट कर आहिस्ते-आहिस्ते उठकर सुहास खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। आज बीस दिन से इन्द्राणी के साथ उसकी बातचीत बन्द है। ससार उसी तरह घड़ी के नियम से चल रहा है। कही कोई भी अनियमितता नही है। सिफ उन्ही दोनो के सिर से मानों एक तूफान गुजर गया हो।

सुहास इन्द्राणी की बात नही जानता, लेकिन सुहास के लिए सारी पृथ्वी का रूप ही बदल गया है। आज इन्द्राणी के हृदय मे सुहास के लिए कोई स्थान नही है। इन्द्राणी सुहास को अब और प्यार नहीं करती। इन्द्राणी की आँखों की पुतलियों मे सुहास की छाया नहीं है। सुहास की दुनियां और इन्द्राणी की दुनियां अब एक नही है। फिर ?

फिर सुहास को आश्रय कहाँ मिलेगा ?

कैसी सी एक कटु अनुभूति से सुहास का दम घुटने सा लगता है। इन्द्राणी के बगैर, इन्द्राणी के प्रेम के बगैर तो जीवन में और स्वाद ही नहीं है।

सोने के कमरे में घुसने की सुहास की इच्छा ही नहीं होती। इन्द्राणी को दुख देकर भी तो उसे खुद को ही अशान्ति मिलती है। इन्द्राणी यह बात क्यों नहीं समझती ? लेकिन इन्द्राणी का मानों इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है, कुछ आता-जाता नहीं है, बल्कि सुहास की तरफ से तर्क और जिरह बन्द हो जाने पर उसे थोड़ी सी राहत मिली है। बाहर से उसकी जीवन यात्रा में कोई परिवर्तन हुआ हो, ऐसा तो मालूम नहीं देता। वही रोज की तरह सहज स्वभाव से घर-संसार के काम चला रही है। नौकरों-चाकरों को हुक्म दे रही है, बुन रही है, जरूरत पड़ने पर साज-शृंगार करके बाहर दुकान पर या माल पर घूम आती है, पड़ोसियों या मित्रों का साथ दे रही है, रेडियोग्राम खोल कर अपनी पसंद के गाने सुनती है, या हमेशा की तरह अभ्यस्त अपना नहाना खाना भूल कर किताबों के बीच में डूब जाती है। किसी भी काम में सुहास की कोई भूमिका नहीं है।

इन्द्राणी तो पहले भी ऐसी ही थी किन्तु उसमें सुहास भी था। अब सुहास को वर्जित करके भी इन्द्राणी की दुनियाँ वैसी चल रही है। इस से सुहास को और दुख होता है।

सुहास घर के भीतर चहलकदमी करने लगा। स्त्री उसे प्यार नहीं करती, इतनी बड़ी शर्म की बात किसी को कही भी नहीं जा सकती। कहने से लाभ भी क्या है ? लेकिन सुहास इस तरह चुपचाप और सहन नहीं कर पाएगा। इन्द्राणी धीरे-धीरे बात को बढ़ा रही है।

सुहास ने धीरे-धीरे कम्बल को अच्छी तरह लपेट लिया। ठंड लग रही है। क्लांत शरीर में सभी कुछ मानों ज्यादा महसूस होता है।

वह सौमित्र के व्यवहार से अवाक् हो गया। क्या सौमित्र समझ

नहीं पाता कि उसकी उपस्थिति ने इन पति-पत्नी के बीच में गलत-फहमी पैदा कर दी है ? यह सब बातें क्या जोर से कह कर ही किसी को समझाने की जरूरत है ? आजकल तो सुहास के साथ सौमित्र की कोई बातचीत ही नहीं होती है, लेकिन इन्द्राणी के साथ मिलना-जुलना ठीक ही चल रहा है। इन्द्राणी के साथ भी सुहास की बातचीत बन्द है। इन्द्राणी अच्छी तरह जानती है कि सुहास को यह सब पसन्द नहीं, लेकिन वह इस तरफ ध्यान देने की जरूरत भी नहीं समझती। सुहास का नीरव प्रतिवाद वह अपने ध्यान में भी नहीं लाती, क्या जानबूझ कर ही वह इतनी उपेक्षा कर रही है ? मालूम होता है वह सुहास को धैर्य की सीमा पर पहुँचा देना चाहती है, जिससे सुहास कोई एक सिद्धान्त पकड़ने पर मजबूर हो जाए।

क्या पता !

सुहास खिड़की के पास खिसक आया।

रात के लगभग नौ बज गए। इस ठंडे देश में इस समय कोई खास काम न रहने पर कोई भी बाहर नहीं निकलता।

सामने बाग और दूर पहाड़ सभी कुछ चाँद की चाँदनी में चमक रहा है। प्रकृति एक अद्‌भुत मनोहर सृष्टि कर रही है। इन्द्राणी चाँदनी से ढँके दूर की इन पहाड़ियों को कितना प्यार करती है, उसे घर में टिकना अच्छा नही लगता। सुहास को याद आया, कुछ एक महीने पहले ही, इन्द्राणी ने कमरे में चाँदनी आने के लिए कांच की खिड़की पर से फेल्ट के भारी-भारी पर्दे हटा दिए थे और कालीन के ऊपर बैठ कर उसकी छाती के ऊपर सिर रख कर गाना सुनाती रही है। वह सब दिन कहाँ गए ?

घर में रहने की अब सुहास की भी इच्छा नहीं होती।

बगल का दरवाजा खोल कर दो-चार सीढ़ी उतर कर टैरस गार्डन पर चला आया। यह घर पहले किसी योरुपियन ने बनवाया था। मालूम होता है उसे भी इस तरह पर्वतों की गोद में चाँदनी में डूब कर

फूलों के बागों में बैठे रहना अच्छा लगता था। नहीं तो इतना सुन्दर बाग बनवाने की इच्छा उनके मन में ही क्यों उठती ?

उसने पास में बड़े-बड़े सफेद रंग के फूल लगा रखे थे। दूसरी तरफ पैंसी के झाड़। सुहास पैंसी के झाड़ की तरफ आ कर खड़ा हो गया। कम्बल और भी अच्छी तरह खींच-खाँच कर अपने को अच्छी तरह ढँक कर सिगरेट सुलगा ली।

पाईप के पेड़, लाइनों में खड़े नीरव साक्षी देते हुए खड़े हैं। सुहास को ऐसा लगा मानों उनका अस्तित्व भी बिल्कुल उसके अपने जैसा ही है। आज इन्द्राणी के लिए भी उसका अस्तित्व क्षीण हो गया है। उसके हृदय-आकाश में आज सुहास अब उद्‌भासित नहीं है। सुहास की छाती में कैसी आँधी सी उठने लगी।

सिगरेट का कश खींचते-खींचते सुहास मानों अन्यमनस्क हो गया। दूर पहाड़ कुहासे की चादर से ढँके खड़े है। युग-युग से उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनमें वैचित्र्य है, लेकिन मूलतः उनमें कोई परिवर्तन नहीं है। लेकिन मनुष्य का मन कितनी आसानी से बदल जाता है। दार्जिलिंग आने के बाद प्रकृति का यही सौन्दर्य उसने इन्द्राणी के साथ उपभोग किया है। आज वह अकेली है।

× × ×

चारों तरफ अद्‌भुत निस्तब्धता है।

कान लगाने से शायद पहाड़ों के मन की बात सुनाई पड़ जाती है। सुहास बहुत देर तक खड़ा रहा।

धीरे-धीरे उसके मन की ज्वाला भी कुछ कम हो गई। प्रकृति की इस विराट व्यापकता में, रात के अन्धकार में, बाहर के इस निस्तब्ध नग्न सौन्दर्य में उसे अपना सुख-दुःख हठात् बहुत ही तुच्छ अनुभव होने लगा।

यह ठीक है कि इन्द्राणी उससे प्यार नहीं करती। लेकिन इस विशाल पृथ्वी की तुलना में इन्द्राणी है ही क्या? इन्द्राणी का प्यार खतम हो गया, इसी से क्या उसको सब कुछ निरर्थक लग रहा है। लगता है शायद उसका जीवन ही समाप्त हो गया। लेकिन क्यों, क्या इन्द्राणी ही उसका जीवन है, क्या उसके जीवन में और कुछ नहीं है? जिनकी पत्नी उन्हें प्यार नहीं करतीं, वे क्या अपना जीवन खो बैठते है? क्या उन्हें अपने जीवन में किसी और चीज की जरूरत नहीं रहती?

सुहास की इच्छा हुई कि वह एक बार अपना हृदय तोल कर देखे।

लगता है उसका हृदय असहनीय वेदना मे टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।

वहाँ भी इन्द्राणी ही है।

इन्द्राणी के अलावा सचमुच ही उसके जीवन मे और कुछ नही है।

उसके निःसंतान एकाकी जीवन में इन्द्राणी ही सब कुछ है। उसके अस्तित्व के मायने ही इन्द्राणी है, इन्द्राणी ही सारी दुनियाँ है।

उसके सिर में असह्य पीड़ा होने लगी। एक बार पहाड़ों की तरफ देख कर सुहास ने कमरे में जाने के लिए पाँव बढ़ाया। ठीक तभी उसकी दृष्टि इन्द्राणी पर पड़ गई।

इन्द्राणी ही खड़ी है। उधर की खिड़की का पर्दा खिसका कर आकाश की तरफ ताक रही है। इन्द्राणी भी क्या उसकी तरह मानसिक पीड़ा भोग रही है? लेकिन इन्द्राणी क्यों? इस व्यवधान की रचना तो तुम्हीं ने की है। तुम तो सब कुछ खीच कर, अलग करके, फिर से सुहास के व्यथित हृदय को अपने हृदय की छाया में भुला सकती हो।

फिर?

असम्भव क्यों है इन्द्राणी?

एक बार इच्छा हुई कि उसे पुकारे, लेकिन उस पर नजर पड़ते ही इन्द्राणी झटपट पर्दा खींच कर खिसक गई।

इन्द्राणी सुहास को और सहन नहीं कर पाती, यह बात अनुभव करने से ही सुहास को गोली लगने की सी पीड़ा महसूस हुई। सुहास ने घायल पशु की तरह दोनों हाथों से मुँह ढँक लिया।

× × ×

उसे पता नहीं, वह कब तक खड़ा रहा।

बहादुर के पुकारने पर उसे होश आया।

खाना ठंडा हो रहा है।

रहने दो, उसका सारा जीवन ही तो ठंडी मृत फसल की तरह बदल गया है। वह इन्द्राणी को इतना ज्यादा प्यार करता है यह बात पहले शायद वह खुद भी नहीं जानता था। मन में जहाँ भी खोजता है उधर इन्द्राणी ही इन्द्राणी है। इन्द्राणी ही मानो उसका सारा अस्तित्व है। इन्द्राणी को खोने से पहले इतने बड़े सत्य को वह शायद एक बार भी समझ नहीं पाया था।

× × ×

रात को खाने की मेज पर दोनों ही चुपचाप है, मानों उनकी सारी बातें ही खत्म हो गईं। नियमानुसार कांची को कुछ एक निर्देश के अलावा और अधिक कुछ बात बोलने की जरूरत इन्द्राणी को नहीं रही।

सुहास लगभग कुछ भी नहीं खा रहा, खा ही नहीं पाता था।

इन्द्राणी मानो सब कुछ देख कर भी नहीं देख रही थी। लेकिन अगर पहले के दिन होते तो·····? सुहास का गला रुदन के आवेग से अटक गया। इन्द्राणी के मन में अब सुहास नहीं, सौमित्र है।

लेकिन इसके बाद ही सुहास की उपेक्षा करके उसने जब कांची को बताया कि कल रात को सौमित्र भी खाना खाएगा और इसलिए बाजार

जाने से पहले माली उसको मिल कर जाए तो सुहास के विस्मय की सीमा नहीं रही।

इन्द्राणी ने समझा क्या है ? सुहास पत्थर का है क्या ?

शर्म नहीं, डर नहीं, लेकिन आँखों में लिहाज नाम की भी तो कोई चीज है, या प्रेम के आवेग में इन्द्राणी बिल्कुल ही अन्धी हो गई है ? रास्ता भूल कर ज्ञान-शून्य हो कर वह चलती चली जा रही है। ऐसा ही तो लगता है। अवैध प्रेम मनुष्य को शायद ऐसा ही पागल कर देता है, इसीलिए शायद इन्द्राणी भी सर्वनाशी प्रेम में सब कुछ भूल गई है।

सुहास मेज पर से खड़ा हो गया। पागल की तरह लड़खड़ाते हुए दिवान के ऊपर अपने अलग बिस्तर पर पड़ कर सो गया।

इन्द्राणी कितना बदल गई है।

सुहास ने प्रायः कुछ भी नही खाया, उसकी चुप्पी ने इन्द्राणी को मानों बिल्कुल भी स्पर्श नहीं किया, बल्कि सौमित्र खाएगा इसलिए उसे कितना उद्वेग और चिन्ता है। मनुष्य क्या इतना भी निष्ठुर हो सकता है ? क्या सिर्फ इसलिए कि इन्द्राणी सुहास को अब और प्यार नहीं करती ? लेकिन गृह-स्वामी के हिसाब से तो सुहास की एक भूमिका है। या इन्द्राणी उसको भी अस्वीकार करती है। यह ठीक है कि इन्द्राणी हमेशा से ही अपनी इच्छानुसार काम करती रही है। सब बातों में ही सुहास की सम्मति के सम्बन्ध में वह बिल्कुल निश्चिन्त है, लेकिन इसी लिए क्या सौमित्र के मामले में भी ?

इन्द्राणी तो अच्छी तरह समझती है कि सौमित्र के साथ उसका सम्बन्ध अन्य साधारण घटनाओं की तरह नहीं है, हो ही नहीं सकता।

फिर ?

सौमित्र भी कैसे सुहास को टाल कर इस घर मे आ सकता है, यह सुहास की समझ में नहीं आया। हो सकता है और दफे की तरह इस बार भी इन्द्राणी ने सुहास के नाम से निमन्त्रण दिया हो। फिर इसके

बारे में सुहास को एक बार भी बताने की जरूरत उसने नहीं समझी ?

कम्बल खिसक गया था। अच्छी तरह उसे खींचते समय उसकी आँखों से पानी बह निकला।

सुहास को पिछले साल की बातें याद आ गईं जब इन्द्राणी उसे प्यार करती थी।

पिछले साल सर्दी बहुत पड़ी थी। सोने से पहले कितने यत्न और आग्रह से इन्द्राणी उसका बिस्तर ठीक करती थी।

कांची तो गर्म पानी का बैग वगैरह सब कुछ ही रख देता था फिर भी इन्द्राणी को उससे तसल्ली नहीं होती थी। कितनी बार देखती थी। यह उसका स्वभाव ही था। सोने के बाद भी उसके दोनों तरफ लिहाफ अच्छी तरह दबा देती थी। शायद उसको बिल्कुल शिशु समझ रखा था उसने। इन्द्राणी ने उसे कितने स्नेह, यत्न और ममता से भर रखा था।

रात को सर्दी में बिस्तरे से उठ कर, उसकी देख-भाल करने के लिए सुहास उसे मना करता था। इतनी सर्दी में अपने को कष्ट देने की क्या जरूरत थी ? सुहास क्या कर नहीं सकता ? लेकिन इन्द्राणी सुनती नहीं थी।

इसमें कष्ट की क्या बात है ? बच्चा-वच्चा होता तो क्या करना नहीं पड़ता ? फिर ? सुहास को इन सब बातों का ख्याल है क्या ? फिर ठंडा खाकर बीमार हो गया तो ? रात को अच्छी तरह नींद न आए तो ? क्या कुछ सोचती थी।

इन्द्राणी ने उसे सिर्फ प्रेमी के प्यार से ही लिप्त नहीं किया, परन्तु परम स्नेह, गम्भीर ममता से, उसे अपने उतप्त हृदय में आश्रय दिया था।

आज वह आश्रय कहाँ गया ? सुहास का माथा सोचने से भी भन्ना उठता है। उसे यह विश्वास करने की इच्छा होती है कि इन्द्राणी और और सौमित्र की मित्रता ने या प्यार ने कोई चरम उग्र रूप धारण नहीं किया। लेकिन यह सोचना तो सुहास की अपनी इच्छा है। आँखें बन्द

कर लेने से ही क्या सुहास सत्य को टाल सकता है ?

रास्ते में सामयिक सान्त्वना तो मिल सकती है, लेकिन समस्या का समाधान कहाँ है ?

इन्द्राणी ! इन्द्राणी !!

सुहास ने दो बार बहुत धीरे-धीरे पुकारा ! इन्द्राणी तुम कौन सी सर्वनाशी पुकार का जवाब देने चली हो ? वहाँ तुम्हारा आश्रय कहाँ ?

सुहास करवट बदल कर सो गया ।

उसकी दोनो आखों से पानी गिरता रहा । उसने केवल सुहास का ही घर बर्बाद किया हो, ऐसी बात नही । लगता है अपने जीवन का केन्द्र भी खो दिया है । नही तो वह ऐसे अनिश्चित सत्यानाशी प्यार को क्यों प्रश्रय देती ? या यह सुहास का निराधार सन्देह है । नीच सन्देह ने ही इन्द्राणी को धीरे-धीरे उसके पास से दूर खिसका दिया है ।

सुहास समझ नहीं पाता ।

लेकिन निराधार क्यों ?

क्या इसलिए कि इन्द्राणी इसको निराधार कहती है ? इन्द्राणी के लिए यह निराधार हो सकता है । अपने काम के पक्ष में सभी कोई न कोई युक्ति या तर्क दे देते है, लेकिन सिर्फ इसीलिए सुहास उसे आधार-हीन कह कर क्यों स्वीकार कर लेगा ?

उस दिन शाम को उसने सौमित्र को स्पष्ट रूप से इन्द्राणी का हाथ चूमते हुए देखा था । फिर ? अपनी आँखों से ही तो देखा है यह तो और झूठ नहीं हो सकता । यह पाश्चात्य अदब-कायदों का अभ्यस्त सौमित्र इसे बिल्कुल भद्रता ही समझता है । ठीक है ! सौमित्र के लिए हो सकता है इन सबका कोई मायने न हो, लेकिन इन्द्राणी के लिए ? खास तौर पर सुहास के लिए ? उसकी पत्नी के साथ इतना घनिष्ट व्यवहार करने की स्वाधीनता सौमित्र को किसने दी ?

यह सब सुहास को किसी भी तरह पसन्द नहीं ।

यह सब उसकी बर्दास्त के बाहर है। वह इसे प्रश्रय नही देना चाहता।

निश्चय ही असली आदमी से ही सौमित्र को प्रश्रय मिल रहा है।

वह इन्द्राणी खुद ही है।

सुहास इन्द्राणी पर जबर्दस्ती शासन कर सकता है, लेकिन यह तो सुहास का स्वभाव नही है। वह पत्नी है, इसलिए उसकी व्यक्तिगत स्वाधीनता में हस्तक्षेप करने की बात कभी भी सुहास की कल्पना में नहीं आई।

उसमें पौरुष नही है, इसलिए नहीं। बल्कि इसलिए कि वह इन्द्राणी को प्यार करता है। और इसी प्यार की दुर्बलता ने उसको इन सब बातों में भी निरस्त कर दिया, इसके अलावा भद्रता के कारण भी। इन्द्राणी शायद उसकी दुर्बलता का फायदा उठा कर ही सुहास को इस तरह दुःख दे रही है। लेकिन शादी के बाद से ही तो इन्द्राणी इस स्वाधीनता का उपभोग करती रही है। दाम्पत्य सम्बन्ध के विषय में सुहास की तरह इन्द्राणी भी भद्रता-रक्षा के ऊपर यथेष्ट महत्व देती है, इसे लेकर के कभी कोई प्रश्न उठ सकता है यह उनकी कल्पना के भी बाहर था। वे दोनों स्वाधीन होते हुए भी एक दूसरे के सामने स्वाभाविक रूप से ही बन्दी थे, यह बन्धन प्यार का ही बन्धन था।

लेकिन आज ?

यही नहीं कि इन्द्राणी ने सिर्फ प्यार करना ही बन्द कर दिया हो, उसने अपनी आजादी का अनुचित लाभ उठा कर सुहास को नीचे गिरा दिया है। सुहास कितना नीचे गिर गया है, नहीं तो वह कैसे इन्द्राणी का गला दबाने गया ? सुहास ने ऊँचे स्वर में बात करके भी कभी इन्द्राणी की मानहानि करनी नहीं चाही, उसी सुहास के लिए इन्द्राणी को इस प्रकार पकड़ना कैसे सम्भव हुआ ? और साथ-साथ मानो इन्द्राणी भी बदल गई। जिस क्षण वह जान गई है कि सुहास इतना नीच हो सकता है, तब से ही वह बदला ले रही है। अब तो मानो

प्रतियोगिता शुरू हो गई है। कौन किसे हरा सकता है।

इन्द्राणी ने उसी दिन से असहनीय घृणा और उपेक्षा का व्यवहार आरम्भ कर दिया है। चीखना-चिल्लाना इन्द्राणी का स्वभाव नहीं है। लेकिन उसकी नीरव उपेक्षा और घृणा भी तभी से सुहास को दग्ध कर रही है। इसके बजाय अगर इन्द्राणी रो-रो कर घर को सिर पर उठा लेती, अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने की चेष्टा करती, तो इससे सुहास को बहुत शान्ति मिलती। लेकिन इन्द्राणी पास में रह कर भी नहीं है। अत्यन्त आत्मीय दो व्यक्ति एकदम अजनबी पड़ोसियों की तरह एक ही घर में रह रहे हैं। आज वह दोनों एक दूसरे के पास से कितनी दूर चले गए हैं। लगता है सुहास से ज्यादा पराया इन्द्राणी के लिए और कोई नहीं है।

सुहास ने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया। सिर्फ सिर में ही नहीं, उसकी छाती में भी तीव्र पीड़ा हो रही है। अगर सुहास इन्द्राणी का प्रेम से उत्तप्त हाथ पहले की तरह अपनी छाती पर रख पाता! लेकिन वह तो दुराशा है। सुहास की आँखों से अनवरत जलधारा बहने लगी। और कुछ दिन तक ऐसे ही रहने से सुहास पागल हो जाएगा। उससे और सहन नहीं होगा। वह इस मानसिक यन्त्रणा से छुटकारा पाना चाहता है।

तकिए के ऊपर सिर रख कर सुहास ने अचानक बच्चों की तरह रोना शुरू कर दिया।

सुहास का सारा दिन बड़ी बेचैनी में कटा।

ज्यों-ज्यों शाम पास आने लगी, सुहास की छाती में एक उद्वेग सिर उठाने लगा।

आफिस में भी आज वैसा ही काम का बोझ था। कितने बिलों का गोलमाल हो गया, पिछले महीने की पेमेंट रिसीट पर दो पार्टियों के पूरे-पूरे हस्ताक्षर नहीं हुए। एक बाउचर ही नहीं मिल रहा। सब मिल-मिलाकर आज आफिस में एक तुमुल कांड खड़ा हो गया। मिजाज

दिखाना उसका स्वभाव नहीं है। लेकिन एक मामूली-सी फाइल मिलने पर ही देरी होने पर वह जिस तरह चीखा-चिल्लाया उसके लिए वह खुद ही लज्जित महसूस कर रहा है।

सुहास मशीन की तरह काम करने लगा

उसका मन सारे दिन इन्द्राणी और उसके घर के चारों तरफ घूमता रहा। इंद्राणी जरूर ही सौमित्र को बार-बार फोन कर रही होगी, तरह-तरह के प्लान बना रही होगी, लेकिन सुहास को छोड़कर ही। मानों उसके जीवन में सुहास आज तीसरा व्यक्ति है, कोई बाहर से आया हुआ। लेकिन इस तरह और कितने दिन चल सकते है? वह आज ही सौमित्र से पूछेगा। और अब सम्भव नहीं है। आमने-सामने बात हो जाना ही उचित है।

आफिस के काम-काज के बीच भी यही बात उसे सबसे ज्यादा तग करती रही। सब कुछ छोड़कर सिर्फ सीधे-सीधे आमने-सामने खडे होने की चिन्ता ही उसके मन को आछन्न किए रही।

जब घर लौटा तो अभी पाँच नहीं बजे थे। लेकिन इसी बीच सौमित्र आ उपस्थित हुआ था।

उसे पता है कि आज सौमित्र यहीं खाएगा। कल सुहास को सुना कर ही उसने सौमित्र को खिलाने का सब आयोजन किया था। लेकिन फिर भी उसने जैसे उसकी आने की आशा नही की थी, खासकर इतनी जल्दी। क्या सौमित्र को और कोई काम नहीं है?

"हलो? मामला क्या है? गृह-स्वामी ही अनुपस्थित है?"

सौमित्र कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। सुहास ने मन-ही-मन सोचा, जान जानकर ज्यादा आदर दिखा रहा है, फिर कठिनाई से हँस कर उत्तर दिया।

"इतनी जल्दी आना तो सम्भव नहीं है। हम लोग तो नौकरी करते है न ! पाँच से पहले नहीं आ सकते। इसके अलावा स्वामिनी तो है।"

"हाँ, लेकिन अर्धांगिनी। मैं पूरी-पूरी उपस्थिति चाहता था। नहीं तो अच्छा नहीं लगता।"

सुहास उसकी झूठ बोलने की क्षमता देख कर अवाक् रह गया। जानता सब है। फिर बोला—"क्या कहते हो ? हर समय पूरा-पूरा अच्छा नहीं लगता।" हेल इज द अदर पर्सन। अदर पर्सन कैसा है ?

"तुम्हें नहीं मालूम कौन ? मालूम होना चाहिए।"

तेज नजरों और टेढ़ी नजरों से सुहास इन्द्राणी की तरफ देखा। लेकिन दोनों ही बिल्कुल निर्विकार थे। उनके लिए निर्विकार होना सम्भव है, लेकिन सुहास से तो नहीं हुआ जाता। उसकी तो जान पर आ पड़ी है। यहाँ रह कर रोज-रोज जलने की बजाए तो कलकत्ता ट्रान्सफर हो जाना अच्छा।

"सोच रहा हूँ कलकत्ते ट्रान्सफर करा लूँ।"

"क्यों, कुल डेढ़ साल ही तो हुए हैं। क्या दार्जिलिंग अच्छा नहीं लगता ?" सौमित्र अवाक् होकर पूछ बैठा।

"अच्छा लगना ही तो सबसे बड़ी बात नहीं है। असल में तो प्रयोजन ही है।"

"कलकत्ते में तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?"

"वाह, यह सब तुम्हें कैसे पता लगेगा ? मेरे जीवन के क्या सब पन्ने तुम्हारे सामने खुले हुए है ?"

"नहीं वह तो निश्चय ही नहीं है, लेकिन तुम्हारे मन में यह क्यों हुआ, इसलिए पूछा।" सौमित्र ने आराम से जवाब दिया।

"क्या तुम्हारे माँगने से ही कलकत्ता तुम्हारा ट्रान्सफर कर देंगे ?" इन्द्राणी ने हठात् सूखे गले से पूछा।

"कलकत्ते कर दें तो अच्छा है, नहीं तो नौकरी छोड़ दूंगा।"

"यह क्या ?"

"हाँ ! उसके अलावा जो बाजार का हालचाल है, उसके अनुसार इस वेतन में गुजारा नहीं चलता। एक आफर भी आया है, एक मर्केन्टाइल फर्म से।"

सुहास स्वयं भी अवाक् हो गया। क्या बोलना चाहता था और क्या बोल गया। नौकरी या रुपये-पैसे के मामले में वह चिन्ता थोड़े ही न करता है। उन लोगों के मकान के किराए और इतने दिन की नौकरी के वेतन मिला कर जो पैसा मिलता है वह उनकी छोटी सी गृहस्थी के लिए काफी ही नहीं, ज्यादा भी है। अपने वेतन के लिए कभी उसने मगजपच्ची नहीं की।

फिर ? जो असह्य दुश्चिता उसको दिन रात तिल-तिल करके जला रही है उसी सत्य को बताने की उत्सुकता। वह आज साफ-साफ सौमित्र का अपमान करके उसके गोपन सम्बन्ध पर से पर्दा हटा कर फेंक देना चाहता था। लेकिन वह यह सब कुछ भी नहीं बोल पाया। उन दोनों के निर्विकार भाव ने उसका मुँह बन्द कर दिया। ये सब बात बोलने के लिए उसका मन ही नहीं हुआ।

अचानक मन में हुआ कि इन लोगों के सामने अपने मन की ज्वाला प्रकाशित करने की जरूरत ही क्या है ? उसके बोलने से उनका क्या बनता-बिगड़ता है। वह खुद ही इनके सामने छोटा हो जाएगा। और हो सकता है वह इस पर हँसे।

अपनी पत्नी ही आज सबसे ज्यादा पराई हो गई। उसके साथ बात करते डर लगता है, सोचना समझना पड़ता है। वह आज पराई हो गई है।

यह बात कहने के बाद सुहास को बहुत बेचैनी महसूस होने लगी। बिना बात बोले भी तो चल सकता था।

सौमित्र ने सिगरेट की राख झाड़ते-झाड़ते कहा, "मामला निश्चय ही तुम्हारा बिल्कुल व्यक्तिगत ही है, लेकिन इन सब बातों पर खूब सोच विचार कर अमल करना ही उचित है।"

हठात् सुहास को अपने ऊपर ही बहुत गुस्सा आया। अच्छा मौका हाथ से खो बैठने की भूल वह अभी-अभी कर बैठा है। यह मौका क्या फिर उसे हाथ आएगा ? यही नहीं, उसने सौमित्र के हाथ में हथियार थमा दिया। मुख गम्भीर करके बोला।

"सलाह के लिए धन्यवाद।"

"उपदेश नहीं है भई। तुम मेरे मित्र हो, तुम्हें परामर्श दे सकता हूँ।"

सुहास और भी जल गया।

"मित्र ही सही।"

इसीलिए मित्र की पत्नी के साथ जरा सी भी लज्जा नहीं, मन में तनिक भी दुविधा नहीं हुई। मित्र सोच कर ही तो सुहास ने उसे ग्रहण किया था, लेकिन प्रतिदान में क्या मिला ?

सुहास ने सौमित्र की तरफ से आँखें फेर लीं। फिर धीरे-धीरे बोला, "अर्थात्·····?"

"अर्थात, तुम्हारी तरह पैसा मेरे पास नहीं है। मेरे लिए तो जीवन आसान नहीं है।"

"सुहास ! जीवन तो किसी का भी सहज नहीं है। जीवन के लिए हर किसी को कुछ करना पड़ता है, किसी को कम किसी को ज्यादा।"

"तुम्हारी यह सब बेकार की बातें रहने दो।" सुहास ने उत्तेजित होकर कहा।

"मेरी तरह तुम्हें क्या जीवन में इतना युद्ध करना पड़ा है ? मेरा जीवन आसानी से नहीं कटा। आई हैव स्ट्रगल·····"

इतनी देर बाद इतने पैग की प्रतिक्रिया शुरू हो गई। उत्तेजना से उसका मुँह लाल हो उठा।

सौमित्र ने उसकी तरफ एक बार ताका, फिर धीरे-धीरे बोला। "तुम इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हो सुहास ? मित्रों के बीच में बात चल रही है। मैं तो तुम्हें पहचानता हूँ, फिर ?"

शायद सुहास की आँखो से पानी निकल पड़ा, वह सौमित्र से हमेशा की तरह ईर्ष्या करता है। सौमित्र ने फिर कहा, "बी काम फ्रेंड, बी कम्पोज्ड·····"

सुहास ने देखा इन्द्राणी की आँखों में असीम श्रद्धा भरी थी। इसमें सन्देह नहीं कि पति के इस उत्तेजित पागलपन से उसमें घृणा ही पैदा होती है। दूसरी तरफ सौमित्र के शांत संयत व्यवहार ने उसे निःसंदेह इन्द्राणी की आँखों में और भी श्रद्धेय कर दिया है। सुहास की दोनों आँखे जल उठी।

सौमित्र नाटक के महत्व और प्रधान चरित्र की दृष्टि से हमेशा बना रहेगा। खेल की आखिरी चाल उसी के हाथ में रहेगी, सुहास वहाँ नगण्य है।

"सुहास!" गहरे स्वर से सौमित्र ने पुकारा।

"मैं जानता हूँ तुमने जीवन में बहुत स्ट्रगल किया है। मुझे भी करना पड़ा है। कहा तो कि प्रत्येक को ही करना पड़ता है। इस समय मेरा जो जीवन है वह तुम्हें सहज और आनन्दमय प्रतीत हो सकता है, लेकिन मुझे भी सबेरे पाँच से लेकर रात दस बजे तक मेहनत करनी पड़ती है। कितने दिन तो नहाने-खाने का भी समय नही मिलता।"

सिर्फ इन्द्राणी के साथ प्रेम करके मेरा घर तोड़ने का समय मिलता है, सुहास ने मन ही मन सोचा। इन्द्राणी की तरफ ताक कर देखा, वह मुग्ध दृष्टि से सौमित्र को देख रही थी। सुहास की छाती ईर्ष्या से जल उठी। उसने तो खुद ही सौमित्र का रास्ता खोल दिया था, जिससे वह इन्द्राणी की आँखों में और भी ऊँचा उठ जाए।

सुहास आज सचमुच अपने ऊपर बहुत गुस्सा था। वह सौमित्र के कर्ममय जीवन की कहानी जानता है। लेकिन अपने निरर्थक जीवन में थक-थका कर घर मे जब घुसता है तो वहाँ उसकी पत्नी के हृदय में उसके लिए प्यार नहीं। यह प्रवचना वह किस तरह सहन करेगा?

सुहास ने थोड़ा रुक कर कहा, "तुम मेहनत करके उसका चौगुना

फल पाते हो। लेकिन मेरे इस थैंकलेस काम से क्या फायदा! यह बात तो तुम अस्वीकार नहीं कर सकते।"

"अस्वीकार नहीं कर रहा, लेकिन थैंकलेस कहने से तुम्हारा क्या अर्थ है? तुम्हारी नौकरी सरकारी है वहाँ स्वीकृति का अर्थ है प्रमोशन।"

"मैं उस प्रमोशन के बारे में मगजपच्ची नहीं करता। मैं दूसरी स्वीकृति की बात कह रहा हूँ।"

"किस की, स्वीकृति?" कौन सी स्वीकृति?

"पता नहीं?"

सुहास ने अपने को सँभाल लिया। बहुत देर मानों धीरे-धीरे अपने मन में ही बोला—मैं अपने इस अर्थहीन जीवन को लेकर बहुत दुखी हूँ। सचमुच बहुत दुखी हूँ। मुझे बहुत अकेला-अकेला लगता है, बहुत अकेला।

सुहास ने अपना सिर सोफे के ऊपर रख लिया।

सौमित्र बिल्कुल पास खिसक आया। उसका एक हाथ अपने हाथ में लेकर भीगे स्वर से बोला, "सुहास! क्यों? तुम अपने को अकेला क्यों समझते हो? जिसके पास मिसेज सेन जैसी स्त्री हो, वह अपने को अकेला क्यों सोचता है? इसके अलावा, मैं भी तुम्हारा मित्र हूँ, तुम्हारा शुभाकांक्षी।"

"धन्यवाद!"

"सुहास! यह नहीं है। मैं सचमुच तुमको, तुम लोगों को प्यार करता हूँ। मन में मित्र ही समझता हूँ। इतने दिन बाद भी यह बात समझानी पड़ेगी?"

"तुम आजकल बहुत ज्यादा सेंटीमेंटल हो गए हो।" इन्द्राणी बहुत देर बाद बोली।

सुहास ने इन्द्राणी की तरफ अश्रुपूर्ण आँखों से देखा। इन्द्राणी ने यह बात कही है कि वह आजकल बहुत सेंटीमेंटल हो गया है? इन्द्राणी क्या नहीं जानती कि थोड़ी सी बात से ही उसे कितना दर्द होता है फिर?

फिर भी सौमित्र ने बात पर जोर दिया।

"नहीं, नहीं! सेंटीमेंटल होने की बात नहीं है। मेरे ख्याल से किसी बात से सुहास को दुख पहुँचा है! लेकिन सुहास! तुम्हें एक बात कहूँ?"

"कहो।" उधर की तरफ देखे बगैर ही सुहास बोला।

"सुहास। जैसे मैं तुम्हारे जीवन का सब कुछ नहीं जानता, तुम्हारा दुख, तुम्हारा संघर्ष, तुमको, उसी तरह तुम भी मुझे पूर्णरूप नहीं जानते।"

"सम्भव है।" सुहास ने अपने को संभाल कर कहा।

"सम्भव नहीं, ठीक है। मैंने अपने जीवन के कितने अध्याय तुम्हारे सामने खोल दिए हैं। आज सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि मेरा जीवन भी सहज नहीं है। आज मैं दो-तीन चाय बागान का मालिक हूँ, खूब पैसा है, रोकने-टोकने वाला कोई नहीं। लेकिन हमेशा से तो ऐसा नहीं था। तुम तो जानते हो यह सब मेरी पैतृक सम्पत्ति नही है। अपनी बनाई हुई है। पैतृक नाम का तो एक घर भी मेरा नहीं है। हम लोग निम्न मध्य श्रेणी के थे। सिर्फ पढ़ने-लिखने में जरा अच्छा था, इसलिए पढ़ने के लिए मुझे पैसे की चिंता नहीं करनी पड़ी। हमेशा स्कालरशिप के पैसे से ही मैंने पढ़ाई की है।"

"यह सब कहने से फायदा?" सुहास ने उसे अपने ये सब गुण प्रकाशित करने के सुयोग से वंचित करने की चेष्टा की, लेकिन सौमित्र ने चहलकदमी करते-करते फिर कहा—

"मैं यही कह रहा हूँ कि जीवन में अच्छे और बुरे दिन तो सभी के आते रहते हैं। यह ठीक है कि बिजनेस में मेरा दिमाग हमेशा से अच्छा रहा है, लेकिन यह तो पक्का नहीं पता था कि सफलता मिलेगी ही मिलेगी। उसके लिए बहुत मेहनत करनी पड़ी है और अब भी मैं कर रहा हूँ।"

"जानता हूँ! उससे क्या मेरे जीवन में कुछ लाभ या हानि होगी?"

"नहीं, वह तो नहीं। लेकिन सुहास तुम इतने हताश क्यों हो रहे

हो ! तुम तो यंगमैन हो ।"

"खाना लगाने को कहूँ ? रात हो रही है ।" इन्द्रानी ने आलोचना रोकते हुए कहा ।

"हाँ सेन चलो ! मुझे भी तो बहुत दूर वापिस जाना पड़ेगा !"

× × ×

इन्द्राणी ने बहुत आयोजन किया है ।

सुहास की दो मन-पसन्द डिसेज बनी हैं, सौमित्र का प्रिय फ्रूट सलाद, किन्तु किसी ने भी इनको लेकर कोई बात नहीं कही । जैसे किसी शोक-सभा में शामिल हों ऐसे उन्होंने खाने की मेज पर बैठ कर चुपचाप खा लिया । सौमित्र जैसा आदमी भी मानों अपना उच्छ-वास प्रकाशित करना भूल गया हो । किसी अभ्यस्त कार्य की भाँति सबने अपना खाना समाप्त कर डाला ।

"काफी तो पिएँगे ?" इन्द्राणी ने पूछा ।

"मैं तो नहीं ।" सौमित्र ने जल्दी-जल्दी जवाब दिया । "मुझे आज और भी जल्दी वापिस लौट जाना चाहिए था, काम है ।"

घड़ी की तरफ सौमित्र ने ताका ।

उसे रोकने के लिए किसी ने भी नहीं कहा सुना । और भी परे-शान सा होकर सौमित्र बड़ा ओवरकोट पहन कर निकल गया ।

हठात् सुहास को स्वयं ही कैसी मूर्खता सी महसूस हुई । सुहास के अपने असंगत व्यवहार के कारण मानों सब कुछ कट गया । सुहास स्वयं ही लज्जित महसूस करने लगा । इन्द्राणी को यह बात बतलाने के लिए उसने जैसे ही उधर देखा इन्द्राणी घर से निकल कर बाहर से ढँके बरांडे में खड़ी हो गई थी । वहाँ से रास्ता बराबर दिखाई पड़ता है ।

सुहास खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया । उसके लिए यही अच्छा था कि वह चला जाए, किन्तु चुम्बकीय आकर्षण की तरह उसे

जैसे कुछ खींच रहा था। अपने को आहत करने का सुयोग शायद वह स्वयं ही बना लेता था।

चाँदनी में सौमित्र साफ-साफ दिखाई पड़ता था। गाड़ी में चढ़ने के पहले सौमित्र ने एक बार ऊपर ताका, वह ठीक जानता है कि वहाँ इन्द्राणी खड़ी होगी। सुहास की छाती जल उठी।

सौमित्र की गाड़ी के जाने की आवाज होते ही वह सोने के कमरे की तरफ बढ़ा, लेकिन इन्द्राणी बरामदे में नहीं थी। लगता है वह बहुत पहले ही बरांडे से चली गई थी। तो क्या उसने सौमित्र के जाने तक इन्तजार नहीं की? तो क्या सुहास ने गलत समझा था? हठात् एक आनन्दमय उच्छवास ने सुहास की छाती को आलोड़ित कर दिया। हो सकता है सब कुछ ही उसने गलत समझा हो, सब कुछ ही दुःस्वप्न हो। उसकी इन्द्राणी उसकी ही है। उसे इसी समय इन्द्राणी के पास जाना चाहिए। वह अब और नहीं रुक सकता। उसने अपने आपके साथ युद्ध करके अपने को ही व्यर्थ में क्षत-विक्षत कर डाला है। अब इसे समाप्त कर देना चाहिए। वह क्या स्वयं ही पीड़ित नही हो रहा है? इन्द्राणी को भी कुछ कम यन्त्रणा नहीं दे रहा?

सुहास से निश्चय कर लिया। सोने के कमरे की तरफ बढ़ कर देखा, दरवाजा बन्द था। हठात् एक निराशा ने उसके दिल को तोड़ डाला। उसे लगा कि उसके लिए इन्द्राणी का दरवाजा हमेशा-हमेशा के लिए बंद हो गया। सुहास दोनों हाथों से मुँह ढँक कर लौट आया।

×××

सुहास ने थर्मामीटर देख कर टेबल के ऊपर रख दिया फिर टैम्परेचर लिखता-लिखता बोला—"देखो कितना बुखार हो गया है! कोई बात तो माननी नहीं।"

इधर ही करवट लिए सो रही थी इन्द्राणी। उत्तर दिए बगैर उसने

करवट बदल ली।

"लो दवाई खाओ। आज-कल कितना एन्टरिक फैल रहा है, लेकिन तुम तो सावधान नहीं रहती, लो थोड़ी सी इलायची लो।"

इन्द्राणी ने उसके हाथ से दवाई और इलायची चुपचाप खा ली लेकिन कोई उत्तर नहीं दिया। पास रखी हुई किताब उठा कर पढ़ने का उपक्रम करते ही सुहास ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"नहीं किताब रख दो! इतने बुखार में किताब मत पढ़ो। मैं तो हूँ।"

"आफिस नहीं गए?"

"नहीं, फोन कर दिया है।"

"क्यों?"

"वाह! तुम्हें बुखार है और मैं आफिस जाऊं?"

"इसके पहले क्या बुखार नहीं हुआ?"

"हुआ है, लेकिन इस दफा......"

बात किये बगैर इन्द्राणी आँखें बन्द करके माथे पर हाथ कर सो गई।

"सिर दर्द कर रहा है?"

"नहीं।"

"जरूर कर रहा है, दबा दूं?"

"नहीं।"

इन्द्राणी ने सुहास का हाथ खिसका दिया।

दस एक दिन पहले भी तो उसे बुखार हुआ था।

हर तीन चार दिन के बाद बुखार आ जाता है। क्या सुहास ने एक बार भी खबर ली? तब भी तो उसके सिर में कितना दर्द होता था, उसने खुद ही डाक्टर को फोन करके दवाई मंगाई। उसने कांची से उसके बुखार की बात सुन भी ली थी, लेकिन तब क्या कोई उत्सुकता दिखाई थी? आज अचानक उसके लिए इतनी चिन्ता?

इन्द्राणी को इन सब बातों से कोई प्रयोजन नहीं। इस युद्ध में वह क्या खुद भी कुछ कम थकी है? क्या उसका हृदय नहीं टूट गया? सुहास उसकी क्या खबर रखता है? शायद सुहास उसके मन की बात समझ गया, उसे इधर की तरफ घुमाने की चेष्टा की उसने।

"सुनो! तुम जरूर मेरे ऊपर गुस्सा हो।"

"गुस्सा किस बात का?"

"किसका, जानती नहीं?"

"नहीं।"

"क्यों? मेरे व्यवहार पर गुस्सा नहीं आया? तुम्हारे साथ कैसा बुरा व्यवहार किया है। उस दफे बीमार पड़ने पर भी खोज-खबर नहीं ली। उस दिन तुम्हारे बात करने पर भी जवाब नहीं दिया।"

"उससे क्या हुआ?"

"लगता है मेरे किसी भी व्यवहार से तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ता। किसी भी बात से तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।"

"प्रायः।"

"प्रायः माने?" सुहास चिढ़ गया।

"तुम क्या बोलना चाहते हो, उपेक्षा की भी एक सीमा होती है।"

"उपेक्षा?"

"नहीं तो क्या?"

हठात् मेज पर फूलदानी में लगे एक गुच्छे फूल पर सुहास की नजर पड़ी। इन फूलों को वह पहचानता है। वह यह भी जानता है कि इन्द्राणी को यह फूल बहुत पसन्द हैं।

"फूल किसने दिए? शायद सौमित्र ने?" सुहास मुह टेढ़ा करके मुस्कराया।

"माली ने।"

"विश्वास नहीं होता, वह जरूर आया होगा? कब?"

"अजीब बात है।"

इन्द्राणी को अच्छा नहीं लगा, लेकिन सुहास लगभग चिल्ला कर बोला—"अजीब कैसा ? क्या करती हो सो क्या मुझे पता नहीं ?"

"चिल्लाओ मत, मेरी तबियत बहुत खराब है।"

सुहास रोगी के कमरे में इस प्रकार चिल्लाने के लिए खुद ही लज्जित हो उठा, लेकिन उसके दिल में आग लग रही थी, लगता है वह खूनी सौमित्र उसका भी खून किए बगैर छोड़ेगा नहीं। यह बात मन में उठते ही सिर की सारी शिराएँ जोर से फड़कने लगीं।

"चिल्लाऊँ नहीं इसके क्या मायने ? मुझे तुमने पागल बना दिया है, तुम लोगों ने जैसा काण्ड शुरू किया है उस पर भी मैं हट्टा-कट्टा काम चला रहा हूँ, यही अस्वाभाविक है, और मैं चिल्लाऊँ नहीं ?"

बात का जवाब दिए बगैर इन्द्राणी ने आँखें बन्द कर लीं।

"सुनो ! आँखें खोलो ! मेरी बात का जवाब दो।"

"बोलो ! क्या चाहते हो ?"

उसके गले की आवाज से उदासीनता साफ झलक रही थी।

"मैं इस तरह से नहीं रह सकता, समझीं ?"

इन्द्राणी ने फिर कोई जवाब नहीं दिया।

"सुनती हो ? इस तरह नहीं चलेगा।"

"क्या करना पड़ेगा ?"

"आज से मैं इसी कमरे मे सोऊँगा। दोनों एक साथ रहेंगे।"

"ठीक है !"

"सिर्फ ठीक है ?"

"और क्या कह सकती हूँ ? मैं इसमें कर ही क्या सकती हूँ ?"

इन्द्राणी की आँखों में सुहास ने एक अद्भुत दूरत्व लक्ष्य किया। हठात् उसके मन में हुआ कि इन्द्राणी निश्चय ही उससे सख्त घृणा करती है और मन ही मन पूजा करती है, प्यार करती है सौमित्र को। उसने अपने आपको एक कृपा-प्रार्थी भिखारी जैसा महसूस हुआ। जोर के साथ बोला—"मैं इस कमरे में नहीं सोऊँगा ! खुश हो तो ?"

"खुशी होने की क्या बात है ?"

"नहीं, मैं तुम्हारे कमरे में भी नहीं आऊँगा, कोई सम्पर्क नहीं रखूँगा।"

"इससे कुछ नहीं आता-जाता।"

सुहास जल उठा—"इसके मायने हैं कि तुम जो मुझे प्यार नहीं करतीं वह सिर्फ गुस्से की बात नहीं है, बिल्कुल ठीक है। क्या नहीं ? तुम्हारे जीवन में मेरे लिए कोई स्थान नहीं है, यह मैं जानता हूँ। मैं नीच हूँ, मैं अभद्र हूँ, मुझे कोई तमीज नहीं। सौमित्र में सब कुछ है।"

"मैंने क्या यह कहा है ?" बहुत देर बाद, लगा बहुत देर से, इन्द्राणी बोली।

"कहा तो नहीं, लेकिन मतलब तो यही निकलता है ? मुझे बिल्कुल त्याग करके तुम अपनी अलग दुनियाँ में रहना चाहती हो। क्या नहीं ?" सुहास की आँखों से पानी गिरने लगा। "मैं यन्त्रणा से मरा जा रहा हूँ, मर रहा हू·····तुम्हारा तो इससे कुछ भी नहीं बनता-बिगड़ता, सब जानता हूँ, सब मालूम है।"

"क्या पागलपना करते हो।" इन्द्राणी ने प्यार से सुहास का हाथ छुआ।

हठात् सुहास को एक प्रचण्ड आनन्द महसूस हुआ। तो क्या अभी भी इन्द्राणी के मन में उसके लिए प्यार संचित है ? आवेग से सुहास का गला रुंध गया, मन हुआ कि इन्द्राणी की गोद में सिर रख कर रो पड़े। बहुत दिन पहले की तरह उसकी गर्म छाती में अपना मुँह रख कर चिपटा ले। उसके शरीर की गंध से अपने को जीवित रखे। उसने एक बार इन्द्राणी की तरफ देखा।

वह दृष्टि अद्भुत थी। आवेग से, कामना से उसकी सारी देह थर-थर काँप रही थी। वह बोलना चाहता था। पूछना चाहता था, इन्द्राणी सौमित्र को इतना प्रश्रय क्यों देती है ? लेकिन पूछ नहीं पाया।

रहने दो, आवरण को बिल्कुल उठा देने की जरूरत नहीं। इन्द्राणी

अगर सब स्वीकार कर ले, अगर कहे, हाँ वह सचमुच सौमित्र को प्यार करती है, सुहास को नहीं, तब वह इस कठोर सत्य को कैसे सहन कर पाएगा ? सुहास सहन नहीं कर पाएगा, नहीं कर पाएगा। इसलिए अपने दोनों हाथों से मुँह ढंके बैठा रहा। कितनी ही देर बाद बोला,

"मेरा सब कैसा गड़बड़ा गया है।"

"क्यों ?

"तुम्हारे लिए।"

"मेरे लिए !" इन्द्राणी का स्वर उसी तरह उदासीन मालुम पड़ा।

"तुम्हारे ही कारण।"

सुहास ने मुँह उठाया, उसके रूखे बाल माथे पर आ गए। आज उसके लाल चेहरे को इन्द्राणी ने अपनी छाती से चिपटा कर दीर्घ चुम्बन से शान्त नहीं किया। उसके रूखे बिखरे बालों को अपने अजस्त्र चुम्बनों से भरा भी नहीं। आज बहुत ही पराए की तरह सिर्फ दूर से ही पूछा।

"मेरे लिए ? आश्चर्य !"

"आश्चर्य नहीं। तुम्हारे अलावा मेरी जिन्दगी में और है ही क्या ? तुम ही मेरा जीवन हो।"

इन्द्राणी ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया, सुहास उसके बहुत पास खिसक आया। "तुम मुझे कहो सिर्फ एक बार कहो।"

"क्या कहूँ ?"

"समझती नहीं ?"

"नहीं !"

"इन्द्राणी ! इन्द्राणी ! बोलो एक बार बोलो !" हठात् उसे दोनों हाथों से पकड़ के सुहास ने उसे जोर से छाती से चिपका लिया।

"छोड़ो ! लगती है।"

"नहीं ! छोड़ूँगा नहीं। आज पहले बोलो।"

"क्या मुश्किल है, छोड़ो।"

"नहीं, नहीं !" सुहास ने उसके मुँह पर, बालों पर लगातार चुम्बन करते-करते कहा।

"तुम मेरी रानी हो, तुम मेरी हो, सिर्फ मेरी, और किसी की नहीं। और किसी की भी नहीं हो सकती। कहो, एक बार कहो।"

इन्द्राणी स्थिर पत्थर की तरह बैठ गई। सुहास के पागलपन में कोई बाधा भी नहीं दी। ऐसा लगता था कि सुहास अगर उसे ताड़-मरोड़ कर खतम कर देता तो छुट्टी मिल जाती, लेकिन लगता है इन्द्राणी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। काफी देर बाद बोली—

"मेरी तबियत ठीक नही है।"

सुहास ने मुँह उठा कर उसकी तरफ ताका। अचानक उसे अपने ऊपर बहुत शर्म आई। उसमें इतने आवेग की अभिव्यक्ति इन्द्राणी ने बड़ी असीम अनुकम्पा और अपेक्षा से सहन कर ली। बाधा तो नहीं दी, लेकिन ग्रहण भी नहीं की।

उसने रुँधे गले से इन्द्राणी से पूछा—"उस दिन मुझसे जो कहा था क्या वही सत्य है ? क्या नही ?"

"क्या कहा था ?"

"मुझे प्यार नहीं करती। बल्कि मुझसे नफरत है तुम्हें।"

इन्द्राणी उत्तर दिए बगैर चुप कर गई।

"बोलो, मुझे जवाब दो, मुझे पता चलने दो।"

इन्द्राणी ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

"चुप रहने से नहीं चलेगा। बोलो ! बोलो !" सुहास ने उसे जोर से झिझोड़ दिया।

"आह ! छोड़ो !"

"नहीं, पहले बोलो !"

"इस तरह का नाटक सहन नहीं होता। बिल्कुल सहन नहीं होता।"

"नाटक नहीं है। यह मेरा जीवन है। मेरा समस्त जीवन...बोलो,

बोलो तुम !"

"क्या ?" इन्द्राणी ने धीरे-धीरे अपने को छुड़ा लिया। फिर अपने बिखरे बालों को चेहरे से हटाती हुई बोली, "अत्याचार क्यों करते हो। मुझसे और सहन नहीं होता।"

"अत्याचार !"

"हाँ, मैं भी तो मनुष्य हूँ .."

"मैं जानता हूँ इन्द्राणी ! तुम बोलो ! सिर्फ एक बार बोलो।"

इन्द्राणी ने कोई जवाब नहीं दिया, उसकी झुकी हुई आँखों से आँसुओं से भी बड़ी-बड़ी बूंदें गिर पड़ीं।

"मेरी रानी !" सुहास ने उसे जोर से अपनी छाती से चिपका लिया। लेकिन उसे साफ महसूस हुआ कि उसकी बाहों में इन्द्राणी सकुचित हो उठी है। सुहास उसे फौरन छोड़ कर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा मैं आफिस जाऊँ।"

कोई उत्तर दिए बगैर इन्द्राणी ने अपनी आँखों पर हाथ रख दिया।

"अच्छा तो फिर जाता हूँ।" फिर से एक बार बोल कर सुहास घर से चला गया।

इन्द्राणी कितनी देर तक उसी तरह लेटी रही, उसके बाद अचानक फूट-फूट कर रो पड़ी।

× × ×

दो दिन बाद ही बुखार उतर गया।

सुहास को जल्दी थी। सबेरे ही चला गया ताकि शाम तक लौट आए, लेकिन सब काम खतम करने में लौटते-लौटते उसे काफी रात हो गई।

इन्द्राणी सो गई थी। सुहास उसके सोने के कमरे के दरवाजे के सामने आकर खड़ा हो गया। और इस तरह कब तक रहा जा सकता

है। लगता है स्टेशन पर दो विभिन्न यात्री प्लेटफार्म पर रेल की इन्तजार कर रहे हैं।

दरवाजा अन्दर से बन्द था। उसने धीरे से धक्का दिया।

कुछ देर तक कोई उत्तर नही आया। कोई आवाज भी नहीं सुनाई दी। इन्द्राणी कर क्या रही है ?

"दरवाजा खोलो, ठंड लग रही है।"

इन्द्राणी ने धीरे-धीरे दरवाजा खोल दिया। उसने अभी तक कपड़े नहीं उतारे थे, सिर्फ फर वाली गरम चप्पलें पहन रखी थीं और जुड़ा खोल दिया था। उसके काले-काले ढेर सारे घने बाल, उसकी पीठ पर बिखरे पड़े थे।

सुहास मुग्ध हो गया। इन्द्राणी इतनी सुन्दर है ! आश्चर्य नहीं कि उसकी स्त्री पर और सब लोग भी पागल हो जाते हैं। लेकिन नहीं, अगले क्षण ही उसे एक व्यथा अनुभव हुई। इन्द्राणी उसकी है, एकमात्र उसी की स्त्री है और उस पर किसी का भी अधिकार नहीं।

"क्या इतनी जल्दी सो गई ? खाना नहीं खाना ?"

"सिर्फ दूध रोटी खाई है, तुम्हारा खाना कांची देगा।"

"मालूम है ! तुम्हारी तबियत कैसी है ? यही पूछ रहा हूँ।"

"ठीक है।"

"गले की आवाज सुन कर ऐसा नहीं लगता। अच्छा सो जाओ।"

"अच्छा !"

इन्द्राणी ने उसे एक बार भी नहीं कहा कि मेरे पास बैठो। सुहास इसी की आशा कर रहा था। परसों दोपहर को इन्द्राणी के आँसुओं ने उसे फिर से पहले की तरह घनिष्ठ होने के लिए प्रलुब्ध कर दिया था, मन कर रहा था कि उसे दृढ़ आलिंगन में अपने छाती से चिपकाए रखे, लेकिन ऐसा कर नही पाया।

आज लौटते समय वह सारे टाइम गाड़ी में यही बात सोचते-सोचते आया था। दोनों के बीच की दीवार किसी भी तरह से टूट नहीं रही

है, उसका सारा हृदय और मन इन्द्राणी के साथ फिर से वही सहज सम्पर्क पाने के लिए व्याकुल हो उठा। वह कैसे इन्द्राणी को समझाए कि दिन-रात वह अपना समय कैसे काट रहा है। इन्द्राणी क्या खुद भी नहीं समझ पाती ? पहले तो बिना बोले भी बात समझ लेती थी ?

सुहास आज सारे रास्ते यही सोचता रहा कि इस तरह और नहीं रहा जा सकता, कि वह सम्पूर्ण समर्पण करके इन्द्राणी को फिर से पा लेगा।

इन्द्राणी के निराश तथा कटिन व्यवहार ने इसको किसी भी तरह आगे नहीं बढ़ने दिया।

× × ×

अकेले खाना खाते उसका मन कैसा उदास हो गया। इन्द्राणी उसे अत्यन्त कष्ट दे रही है, किन्तु फिर भी सुहास किसी भी तरह आगे बढ़ कर अपना अधिकार नहीं जताएगा, बल्कि इन्तजार करेगा और आशा करेगा।

खाने के बाद सोने के कमरे के पास ही, छोटे ड्रेसिंग रूम में कुर्सी पर बैठा वह इन्तजार करने लगा, इन्द्राणी बुलाएगी।

बहुत देर बाद।

धीरे-धीरे चाँद कुहासे से ढँक गया, दूर पहाड़ों पर सियारों की आवाजें सुनाई देने लगीं, सुहास वैसे ही बैठा रहा। एक बार इच्छा हुई कि अगले कमरे में जाकर बैठे, वहाँ फायर प्लेस में लकड़ियाँ जल रही हैं। कमरा भी गर्म है। धीरे-धीरे उठ कर अपने दीवान पर आ कर बैठ गया। फायर प्लेस की सारी लकड़ियाँ जल कर खत्म हो गई थीं। अब धधकती आग नहीं थी, सिर्फ राख के नीचे दबी हुई आग जल रही थी। उसी ने कमरे को गर्म कर रखा था। हठात् उसे सर्दी लगने लगी। दीवान के ऊपर बिछा कम्बल ले कर वह दोनों पाँव ढंक कर बैठ गया।

आग खरोंच कर जला ले ऐसी प्रवृति उसकी नहीं हुई। बुझ जाए, सब कुछ बुझ जाए। किसी भी सुप्त चीज को वह अब और नहीं जगाएगा।

इन्द्राणी ने दरवाजा बन्द नहीं किया था। ठंड लगने का डर था, फिर भी हो सकता है सुहास के लिए ही उसने दरवाजा खुला छोड़ दिया हो। भारी-भारी पर्दों के कारण दिखाई भी नहीं पड़ता था कि वह जगी है या नहीं। कमरे में हल्की-हल्की बत्ती जल रही थी। सुहास ने एक बार खुले दरवाजे की ओर ताका, लेकिन उस दरवाजे से अन्दर घुसने की प्रवृत्ति उसकी ओर नहीं हुई।

धीरे-धीरे उसने अपने दोनों पाँव फायर प्लेस की तरफ फैला दिए। गर्म पानी की दोनों बोतले लेकर माथा सहलाते हुए सुहास ने आँखें ढंक लीं। लगता है अब कभी भी वह इन्द्राणी के पास नहीं पहुँच पाएगा। लेकिन उसे दार्जिलिंग छोड़ना ही पड़ेगा। प्रतिदिन के इस द्वन्द युद्ध में लड़ते-लड़ते वह पागल हो जाएगा। उसे सौमित्र के साथ परिचय होने से पहले ही के दिन बार-बार याद आते हैं, इन्द्राणी के साथ उसका सम्पर्क कितना सहज था।

लेकिन आज ?

समानान्तर रेखाओं की तरह दोनों इधर-उधर खड़े हुए हैं। लगता है कभी भी, कहीं भी उन लोगों का मेल नहीं होगा।

इतनी सर्दी में भी फैल्ट का पर्दा खिसका कर सुहास दूर पहाड़ों की तरफ देखने लगा।

× × ×

अगले दिन आफिस जाकर ही पता चला कि आफिस के मुआएने के लिए चीफ आ रहे हैं। साधारणतयः गर्मियों में या पूजा के समय ही बड़े साहब नीचे से आते हैं। जनवरी की सर्दी में शायद ही कोई ऐसा उत्साही आफीसर होता है जो दार्जिलिंग का टूर करता है। इस-

लिए इस खबर से सुहास काफी अवाक् हो गया।

उसने अपनी टाइपिस्ट लता को बुला कर जरूरी डिक्टेशन दे कर जब घड़ी की तरफ ताका तो सिर्फ बारह बजे थे। अभी भी काफी काम बाकी था, लेकिन सारी रात न सोने से सिर में बहुत सख्त दर्द हो रहा था। उसके क्लर्कों ने ही उसे घर चले जाने के लिए कहा, लेकिन उसकी इच्छा नहीं हुई। उन्हें क्या पता घर में उसके लिए अब सुख और नहीं है। एक साल पहले मौका मिलते ही जो सुहास जल्दी-जल्दी घर भागता था, लंच के समय घर गए बगैर जिसका काम नहीं चलता था, वह सुहास अब बदल गया। इसलिए उसने सोचा कि कांची को फोन करके बता देगा। ठीक उसी समय सौमित्र का फोन आया—

"हलो·····"

"अच्छे तो हो ?"

"हाँ, थैंक्स।"

"आज आ रहा हूँ ! प्रोग्राम बनाइए।"

"अच्छा !"

"अर्थात् . आवाज तुम्हारी बहुत निस्पृही सी मालूम पड रही है। एम आई अनवान्टैड ?

सुहास का मन हुआ कि कह दे, लेकिन वह कौन है ? सौमित्र क्या खुद भी नहीं जानता कि उसके घर में खास तौर पर एक आदमी के लिए वह कितना वान्टैड है। इसलिए उसने बात न बढ़ा कर कहा—"क्या कहते हो ? आओ !"

"अच्छा सात बजे आऊँगा।"

"ओ हो याद आया, आज तो मुझे अभी-अभी एक बार सौरणी जाना होगा।"

"रहने दो, आज और टूर पर मत जाओ। खूब गप्पें लगाएँगे। इसके अलावा कल के लिए एक प्रोग्राम बनाने की बहुत सख्त जरूरत है।"

मानो सुहास के साथ बात करने के लिए ही सौमित्र उत्सुक था।

सौमित्र का साहस देख कर सुहास अवाक् हो गया।

सुहास के चीफ सौरिणी भी जाएँगे। इसीलिए उसे जाना ही होगा, उसने जल्दी-जल्दी कहा—"नहीं! टूर रोक नहीं सकता। इसलिए तुम मत आना। मेरा चीफ आ रहा है, इसलिए वहाँ मुझे जरूर जाना पड़ेगा। पहले से एक बार जाने की जरूरत है।"

"अच्छा! फिर नहीं आऊँगा रहने दो।"

"अच्छा!" सुहास को राहत मिली। अच्छा ही हुआ। वह टूर पर चला जाता तो सारा टाइम उसे यही चुभता रहता कि वह दोनों जने मिल कर आनन्द मना रहे होंगे।

फोन रखते ही आफिस के हेड क्लर्क प्रधान को बुला भेजा। जरूरी-जरूरी बात कह कर उसे सेफ की चाभी देकर कहा—"देखिए तो ड्राफ्ट और कैश ठीक है या नहीं?"

"कल ही तो गिना है! ठीक है।"

"फिर भी कहा नहीं जा सकता, टूर पर जा रहा हूँ।"

"अच्छा दीजिए।"

प्रधान ने उसकी तरफ अवाक् होकर देखा, और उसके हाथ से चाभी लेकर सेफ खोला। गिन कर चाभी उसके हाथ में वापिस देकर जाते समय हठात् प्रधान ने कहा—

"सर, क्या आपकी तबियत ठीक नहीं है?"

"क्यों?"

"आप देखने में बीमार-बीमार से लगते हैं।"

"अच्छा, ऐसी बात है?"

सुहास अवाक् हो गया, सचमुच ही उसका चेहरा कितने दिन से कैसा सा लग रहा है। कल रात मि० लामा ने भी उसको यही बात कही है। इसके अलावा उसने बेकार ही सब कामों में जरूरत से ज्यादा चिन्ता करनी शुरू कर दी है। पहले से गिने हुए रुपये को फिर से गिनेगा या गिनवायेगा, यह बात सुहास कल्पना भी नहीं कर सकता।

आफिस के लोग भी यह नहीं सोच पाते थे।

लेकिन जाने क्या हुआ ? कहीं विश्वास नहीं, कहीं राहत नहीं। एक लम्बी साँस छोड़ कर सुहास उठ खड़ा हुआ। और उससे नहीं होता। सचमुच बहुत थक गया है। अगर ट्रान्सफर नहीं हुआ तो वह काम छोड़ देगा। क्या होगा ? उन लोगों की जो आमदनी है उससे दोनों का गुजारा मजे में चल जाएगा।

वह जल्दी-जल्दी घर चला गया, और फलाँग-फलाँग कर सीढ़ियाँ पार कर ली। इन्द्राणी घर में नहीं है, सोने के कमरे में, बैठने के कमरे में, कहीं भी नहीं। ड्रेसिंग रूम से लगा हुआ छोटा कमरा, जिसे इन्द्राणी ने पहले पहल रटडी-रूम बना लिया था, जहाँ वह कभी घुसती भी नहीं, सुहास ने वहाँ भी देख डाला।

इन्द्राणी कहाँ है ? फिर चली गई सौमित्र के पास ही ? दिल में आग लग गई। ईर्ष्या और सन्देह से सुहास पागल हो जाएगा, रसोई के पास आते ही इन्द्राणी के गले की आवाज सुनाई दी, बहादुर को क्या-क्या बता रही है। बहादुर कढ़ाई में हाथ चलाते-चलाते सुन रहा है, कांची भी पास खड़ा है।

हठात् इन्द्राणी का ऐसा घरेलू चेहरा मानों सुहास के सामने एक खास अर्थ लेकर खड़ा हो गया। क्या बेकार की बातें सोच-सोच कर मरा जा रहा था वह।

"इन्द्राणी !" आवाज देकर उसने जोर से पुकारा।

"क्या हुआ ?"

"तुम्हारे साथ बात करनी है।"

इन्द्राणी ने एक बार बहादुर और कांची की तरफ देखा। वह लोग भी शायद साहब को इस प्रकार उद्भ्रान्त की तरह रसोई के पास आते हुए देख कर अवाक् हो गए। सुहास को मानो कुछ भी दिखाई नहीं देता। वह सीधा इन्द्राणी की तरफ ताक कर बोला—"तुम्हारे साथ बात करनी है।"

"सुन लिया। इन लोगों को काम बता कर अभी आती हूँ, तुम सोने के कमरे में चलो न।"

हठात् सुहास के मन में हुआ, इन्द्राणी को वह आज तक दे ही क्या पाया है ? सन्तान नहीं है, जीवन मे वैचित्र्य नहीं है, सिर्फ एक गृहस्थी। लेकिन इस बात को तो लेकर इन्द्राणी ने कभी शिकायत नहीं की। बल्कि जहाँ-जहाँ गए है अच्छी तरह सजा-सुजू कर गृहस्थी बसाई है। बदली वाली नौकरी में वह लोग कहीं भी तो ज्यादा दिन नहीं रह पाए हैं, इसीलिए मन ही मन क्षुब्ध होती हुई भी, किसी भी दिन शिकायत नहीं की उसने। यहाँ दार्जिलिंग में, यहाँ भी इन्द्राणी ने अच्छी-खासी सुन्दर गृहस्थी जमा ली। नैपाली, बंगाली, कुछ कम मित्र नहीं हैं उसके, सभी तो उसे गृहणी समझ कर खुश होते हैं। सुहास क्या खुद भी नहीं होता ?

फिर इस परम निश्चित आश्रय को छोड़ कर फिर से एक अनिश्चित वातावरण में नौकरी छोड़ कर एक तुच्छ जीवन में इन्द्राणी को ले जाने का उसको अधिकार ही क्या है ? क्या एक मिथ्या सन्देह के लिए ही नही ? लेकिन यह बात याद करते ही उसके सिर की शिराएँ फिर से फड़कने लगीं।

झूठ कैसा ? कितनी बार तो उसे प्रमाण मिल गया है। इन्द्राणी ने तो अपने मुँह से यह बात कही है। फिर ? सोफे पर न बैठ कर सुहास कमरे में ही चहलकदमी करने लगा।

इन्द्राणी कमरे में घुम कर दूसरी तरफ के दीवान पर बैठ गई। सुहास को हठात् संकोच लगने लगा। जाकर रेडियो-ग्राम खोल दिया।

"कहो क्या कहते हो ?" इन्द्राणी ने रेडियोग्राम थोड़ा धीमा करके पूछा।

"मैं कह रहा था कि मैं आज टूर पर जा रहा हूँ।"

"मालूम तो है।"

"कब से ?"

"क्यों ? बुधवार को ही तो बताया था। ओह इसीलिए बुलाया था।"

"नहीं ! सिर्फ इसलिए नहीं।"

"फिर ?"

"आज क्या वार है ? शनिवार है न ?"

"हाँ !"

"हो सकता है मैं कल ही लौट आऊँ। परसों हम लोग कलकत्ते चले जाएँगे। मै काम छोड़ रहा हूँ।"

"इतनी जल्दी क्या छोड़ सकोगे ?"

"छोड़ तो नहीं पाऊँगा, सिक लीव लूंगा।"

"चार्ज तो किसी न किसी को देना पड़ेगा।"

सचमुच सुहास क्या बेकार की बातें बोल रहा है। नौकरी छोड़ना क्या इतना आसान है ? खास तौर पर जब उसका चीफ आ रहा है ? ठीक यही बात इन्द्राणी ने कही।

"इसके अलावा सुना है कि तुम्हारा चीफ आ रहा है।"

"कहाँ से सुना ?"

"सुना है।"

"इसी बीच शायद सौमित्र ने कहा है ?"

"हाँ, उसी ने फोन पर कहा।"

"सुहास के दिमाग में अचानक खून चढ़ गया। शायद एक ही घंटा हुआ है जब सौमित्र ने उसे फोन किया था और चीफ के आने की खबर सुनी थी। वही उसका काम है क्या ? खाने का समय भी नहीं मिलता।

घृणा और गुस्से से उसका गला सूख गया।

"इसीलिए उसे खाने का समय नहीं मिलता क्या ? इसी बीच इतनी बार फोन करने का समय कहाँ से मिल जाता है ?"

"इतनी बार कहाँ ? इसके अलावा फोन तो मैंने किया था।"

"इसीलिए तो !"

"क्या इसीलिए तो ?" इन्द्राणी ने आश्चर्य-चकित नेत्रों से सुहास

की तरफ ताका ।

"मैं जानता हूँ कि तुम सौमित्र को प्यार करती हो ।"

"यही परम बात कहने के लिए तुम दुपहर के समय आफिस से दौड़े आए हो ?"

सुहास के सिर की रगें फड़क रही थीं ।

"आजकल तुम्हारी बहुत उन्नति हो रही है ।"

इन्द्राणी उठ खड़ी हुई ।

"खाना देने को कहूँ·····!"

"ठहरो, इससे पहले मेरी बात का जवाब देती जाओ ।"

"रोज-रोज क्या जवाब दूं ?"

"रोज-रोज ही तो मेरी बात का उत्तर टालती जाती हो । लेकिन आज टालने नहीं दूंगा ! तुम्हें आज बताना पड़ेगा तुम चाहती क्या हो ?"

"बता तो दिया ।"

"क्या बता दिया ? मुझसे नफरत करती हो ?"

"अगर कहूँ—हाँ ।"

"अगर कहूँ ? क्या यह बात ही तुम्हारा एक-मात्र वक्तव्य है ।"

"तो फिर सुनो—यही मेरा एक-मात्र वक्तव्य है, एक-मात्र सत्य । मैं तुम्हें प्यार नहीं करती, तुम्हें प्यार नहीं करती ।"

"सिर्फ यही नहीं, घृणा करती हो । क्या नहीं ?"

"हाँ, यही ।"

"लेकिन क्यों ? इन्द्राणी ! मेरे अन्दर तुमने घृणा करने लायक क्या देख लिया ?"

"पता नहीं ।"

"पता नहीं, नहीं ! बताना पड़ेगा । बेकार में ही तुम क्यों मेरे से नफरत करोगी ?" उत्तेजित होकर सुहास उठ खड़ा हुआ ।

"बोलो मुझे बोलो !"

"मेरी मर्जी !"

"बेकार में ही तो मर्जी नही हुआ करती। बताओ क्यों ? क्यों ?"

"तुम्हारे उस भीरु व्यक्तित्व के लिए। उस अस्थिर व्यक्तित्व के लिए मैं अपने आपको और बलि देना नही चाहती। नफरत होती है।"

"बलि देना !"

"और नहीं तो क्या ?"

"इन्द्राणी ! क्या कहती हो ? मेरा भीरु व्यक्तित्व कहाँ देख लिया ? कब मैं अनबैलेंस्ड हुआ ?"

"कहाँ नहीं हुए ? एक बार दूसरों के व्यवहार के बारे में तो सोचो !"

"ओह इसका मतलब है कम्पैरेटिवली·····सौमित्र के मुकाबले में। क्योंकि आई डोन्ट नो हाऊ टू ब्रीग।"

"ब्रीगिंग का प्रश्न नहीं है, तुम अद्‌भुत·····!"

"रुक क्यों गई ? बताओ ? एक अद्‌भुत नपुंसक हूँ न ? मुझे डाक्टरों ने कहा है मैं पुरुष की दृष्टि से अपादर्थ हूँ, इसीलिए ?"

"छिः रुको !"

"रुकूँ क्यों ? वही तो एक कारण है, क्या नही ?"

"नहीं, ये सब बातें मैंने एक बार भी नही सोची। सोचने से भी नफरत होती है।"

"नहीं, नफरत नहीं होती तुम्हे। नही तो दिन-रात यह नहीं सोचती कि मेरे जैसे अपादर्थ पुरुष के बदले में अगर सौमित्र···"

"प्लीज, रुक जाओ।"

इन्द्राणी ने दोनों हाथों से मुँह ढँक लिया। उसके सामने खड़े होकर के सुहास ने दोनों हाथों से उसका मुँह पकड़ लिया।

"नहीं ! रुकूँगा नहीं ! क्यों रुकूँ ? सच बात कहने में मुझे और डर नहीं लगता।"

"सच बात ?"

"निश्चय ही मैं जानता हूँ, तुम्हारे मन की सारी बाते समझता हूँ।

इसीलिए मेरे प्यार करने से तुम्हारी देह संकुचित होने लगती है। इसीलिए रात पर रात बीत जाने पर भी मेरे साथ सोए बगैर तुम शान्ति से रहती हो। इसीलिए मुझे पागल देखकर भी तुम खुद आसानी से दिन पर दिन बिताए चली जा रही हो। क्योंकि मेरे इस देह के प्रति तुम्हें अब कोई आकर्षण नहीं रहा, बल्कि सौमित्र···"

"छि: !"

"कैसा छि: ? सौमित्र इस घर में क्यों आता है ? मुझे उसका आना पसन्द नहीं, यह क्या उसे मालूम नहीं है ?"

"हो सकता है उसे नहीं पता हो, वह क्या तुम्हारा मित्र नही है ?"

"था लेकिन अब नहीं।"

"यह बात उसे बता तो सकते हो।"

"बता सकता हूँ, लेकिन बताता नहीं, लिहाज के कारण।

"लिहाज है या डरपोक हो ?"

"डरपोक !"

"निश्चय ही तुम्हें सौमित्र से डर लगता है। उसके संयत व्यवहार के सामने तुम अपने को हीन समझते हो।"

अचानक सुहास के मन में हुआ, तो फिर इन्द्राणी उसकी सज्जनता, चक्षु-लज्जा, इन सब को बराबर भीरुता ही समझती आ रही है ? उस दिन शाम को उसकी मुग्ध-दृष्टि, सिनेमा देख कर रात को गाड़ी से वापिस आना, सब कुछ उसने स्वीकार कर लिया, क्या वह यह नहीं सोचती है ? उसने सज्जनता के कारण इन सब बातों का उल्लेख भी नहीं किया, क्या उसका यही अर्थ लगाया है ? लेकिन इन्द्राणी क्या सुहास को आज नई तरह से जान रही है ? इसीलिए पति को अपादर्थ भीरु समझ कर ही इन्द्राणी आज उसे दूर ठेले दे रही है ?

सुहास के सिर में सहस्त्रों ज्वालाएँ उठने लगीं। इन्द्राणी की तरफ उसने एक बार देखा। वह पत्थर की मूर्ति की तरह दोनों हाथों से मुँह ढँके बैठी थी। उस मूर्ति के मन में क्या है यह सुहास जानता था।

घृणा, उपेक्षा, अपरिसीम तिरस्कार। यह तिरस्कार सहन करके तो कोई भी पुरुष जीवित नही रह सकता।

इस मिथ्या धारणा को खोलने के लिए सुहास व्यग्र हो उठा। उसने दोनों हाथों से इन्द्राणी का मुह जोर से पकड कर उठा दिया।

"सुनो इन्द्राणी! मेरे व्यक्तित्व को भीरु समझने का कारण मै जानता हूँ। तुम समझती हो कि सौमित्र के मनो-भावों को समझते हुए भी मैने तुम्हें उससे मिलने दिया, मै सारे मामले को सुविधा अनुसार ही एस्पेक्ट करता हूँ।"

इन्द्राणी ने कोई उत्तर नही दिया।

"मैं जानता हूँ कि तुम यही विश्वास करती हो। लेकिन यह भी समझ लो कि ऐसा नहीं है। मेरी कल्पना में यह बात नहीं आई कि तुम सौमित्र को प्यार कर सकती हो या सौमित्र तुम्हे मेरी स्त्री सोचने के अलावा, मित्र-पत्नी सोचने के अलावा और कुछ भी सोच सकता है। यह सब मेरी कल्पना के भी बाहर था। समझ रखो मैं....." आवेश से सुहास के होंठ काँपने लगे।

उसके मुँह की तरफ स्थिर दृष्टि से ताक कर इन्द्राणी बोली—"क्या मैने एक बार भी यह बात कही है?"

"अभी तो कहा भीरु, यह वो.....।"

"मैने यह बात इस रूप में सोच-समझकर नही कही है।"

"हो सकता है कि नहीं सोचा या सोच कर नहीं बोला, लेकिन मेरे प्रति तुम्हारा जो व्यवहार है उससे यही प्रमाणित होता।"

"यही प्रमाणित होता है?" इन्द्राणी ने सुहास की तरफ विस्मित दृष्टि से देखा।

अचानक सुहास के मन मे हुआ, यह धारणा ठीक नही है। हो सकता है इंद्राणी ने यह सब सचमुच ही सोच-समझ कर न बोला हो। इन्द्राणी की ओर आगे बढ़ कर उसके मुड़े हुए चेहरे को अपनी ओर खींच लिया।

इन्द्राणी ने उसकी ओर ताका। उसकी दोनों आँखे आँसुओं से भरी थीं। हठात् बलिष्ठ आलिंगन में सुहास ने इंद्राणी को अपनी छाती से चिपका लिया।

इन्द्राणी ने किसी भी तरह अपने को छुड़ाने की कोई चेष्टा नहीं की। सुहास ने उसको और भी जोर से कस लिया। इंद्राणी ने उसकी छाती पर अपना सिर रख लिया।

"मुझसे और नहीं सहा जाता, मुझे मुक्ति दो।"

"क्या कह रही हो रानू ?"

"हाँ तुम्हें मैंने जितना प्यार किया है उतना किसी और को प्यार कर सकूँगी कि नहीं, पता नहीं। लेकिन मेरे उसी प्यार को तुमने ही नष्ट कर दिया है।"

"मैंने ?" क्षीण स्वर से सुहास ने पूछा।

"हाँ तुमने ही, तुम्हारे अलावा और कौन ?" रोते हुए इन्द्राणी ने कहा।

"मैं जानता हूँ और कौन !" गुस्से से सुहास ने कहा, "उसका नाम सहन कर सकोगी ?"

कोई जवाब दिए बगैर इन्द्राणी रोती रही।

"मैं जानता हूँ, हमारे बीच व्यवधान पैदा करने के लिए वह ही दायी है। वह ही स्काऊन्ड्रल, अगर जान बूझकर हमारी गृहस्थी में न आता तब तो यह सब कुछ भी नही घटता। वह खूनी है। सिर्फ खूनी नही, कैथरीन के साथ उसने कैसा निर्मम व्यवहार किया है। मौका मिलने पर उसे ग्रहण करके उसका कितना सर्वनाश किया है, यह अगर तुम्हें पता चलता। लेकिन इन सब मामलो को लेकर मैंने कभी मगजपच्ची नहीं की। वह लम्पट है, पियक्कड़ है, यह सब जानते हुए भी हमने उसे मित्र मान कर ही ग्रहण किया था। यही हमारी भूल हो गई।" थोड़ी देर चुप रह कर सुहास फिर बोला—

"मैं जानता हूँ तुम्हें यह सब बातें बुरी लगती होंगी, लेकिन सच

बात मैं कहूँगा ही ।"

"ये बातें सच नही, यह तुम अच्छी तरह जानते हो ।"

"तुम्हें विश्वास नहीं होता, इसीलिए उस आदमी के बारे में ये सब बातें तुमसे सुनी नहीं जातीं, क्या सिर्फ इसीलिए सच्ची बात झूठ हो जाएगी ?"

इन्द्राणी ने आँसू भरी आँखें उठा करके सुहास की तरफ देखा ।

"मै सुनना नहीं चाहती, क्या इसीलिए ? क्या तुम खुद भी नहीं जानते ? इसके अलावा एक विशेष व्यक्ति के सम्बन्ध में अचानक मेरी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही कैसे उठता है ?"

"रानू !" सुहास लगभग चिल्ला उठा । "तो क्या तुम सौमित्र को प्यार नहीं करतीं ? सिर्फ मुझे ही प्यार करती हो ?"

इन्द्राणी ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

"बोलो, बोलो रानी ! बात का जवाब दो ।"

सुहास ने उसको अपनी छाती की तरफ खींचने की कोशिश की ।

"छोड़ो ! लगती है ।"

"नही, नही छोड़ूँगा ।"

"छोड़ो·····।" इन्द्राणी ने ज़ोर से अपने को छुड़ा लिया ।

"मेरा स्पर्श भी अच्छा नही लगता न ? नही न ?"

इंद्राणी जवाब दिए बगैर चुप रह गई । उसकी दोनों आँखें आसुओं से भरी थीं ।

"चुप रहने से नही चलेगा, बोलो ।"

"फिर से नाटक मत करो ।"

"मायने ? मेरा सब कुछ तुम्हारे लिए नाटक ही है ? और सौमित्र का सब कुछ सच ही है, सब अच्छा है ।" सुहास ने लगभग उसे धक्का दे दिया, ईर्ष्या से उसका चेहरा काला हो गया ।

"ठीक है तो फिर । उसकी ही चिन्ता करो, उसको ही प्यार करो ।

मैं जानता हूँ तुम्हारी आंखो का सारा पानी उसी के लिए है। मै सब जानता हूँ।"

सुहास लड़खड़ाता हुआ कमरे से निकल गया।

जरा देर में ही गाड़ी की आवाज सुनाई दी।

और इन्द्राणी बिस्तर पर गिर कर फूट-फूट कर रोने लगी।

वह सारी बात क्यों नही समझा कर कह सकी! सुहास के सामने अपने हृदय को क्यों नही खोल सकती? समस्त यन्त्रणा, समस्त आवेग वह अब और अपने भीतर नहीं दबा पाएगी। रोने के जोर से उसका सारा शरीर काँपने लगा।

× × ×

उसने गाड़ी खूब जोर से छोड़ दी। हैड लाइट की रोशनी में सामने के कीचड़ भरे रास्ते में दोनों तरफ का गहन जगल घोर अन्धकार को और भी रहस्यमय कर रहा था। घने जंगल के भीतर से सुहास जीप में जा रहा था। इधर वह इन्सपेक्शन पर आया था। लौटने मे बहुत देर हो गई थी। और समय होता तो ऐसी हालत मे वह रुक जाता।

लेकिन अब दूसरी बात है। इसलिए वह सारा काम खतम करके ऐसे वापिस लौट रहा है जैसे कोई भूत पीछे पड़ गया हो। वह अब आए बगैर नही रह सकता। फिर टूर बन्द करके सिर्फ आफिस में काम करके उसे शान्ति नहीं मिलती। टूर करना उसके लिए बहुत जरूरी है, यह बात नही, सिर्फ आफिस और घर उसके लिए असहनीय हो उठा है, इसलिए प्रकृति के बीच मानो उसको शान्ति मिलती है।

आज न आने से भी काम चल जाता। ड्राइवर की तबियत ठीक नहीं है। आफिस की गाड़ी मिली नही, इसलिए अपनी गाड़ी से ही चल दिया है। और कोई समय होता तो वह यह प्रोग्राम टाल देता। इंद्राणी

भी यही कहती। उसे उठने नहीं देती। लेकिन अब नहीं। अब दूसरी बात हो गई है। सुहास ने गाड़ी की स्पीड बढ़ा दी।

× × ×

धीरज नही हो रहा। इतना रास्ता! अभी भी बहुत रास्ता बाकी है, बहुत! बहुत!! अचानक उसकी नजर पड़ी और वह चौक उठा। बाघ या भालू—नहीं, गहन जगल से एक खरगोश निकल आया था। छोटा-सा खरगोश।

हैड लाइट की तेज रोशनी मे उसकी छोटी-सी काया, प्रायः सफेद धूसर रँग, साफ-साफ दिखाई दे रहा था। सुहास ने खरगोश को साफ-साफ देखा और खरगोश ने सिर्फ रोशनी देखी। और कुछ नही। सिर्फ रोशनी देखी।

सिर्फ देखा नही। लगता है उससे प्यार करने लगा, रोशनी की इस तेजी को। लगता है अपने को खो बैठा है। इस सत्यानाशी रोशनी के सामने वह पराजित हो गया है। नहीं तो रोशनी के आलिगन में वह क्यों इस तरह से जकड़ा रहेगा। ठीक उसी दिन-रात की तरह?

सुहास को बहुत खराब लगने लगा।

उसने एक्सीलेटर पर पाँव दबा दिया, खरगोश को पिछाड़ना पड़ेगा, लेकिन आश्चर्य की बात है कि गाड़ी की गति के बढ़ने के साथ-साथ ही खरगोश ने भी अपने दौड़ने की गति बढ़ा दी। सामने पड़ती हुई सत्यानाशी रोशनी में खरगोश भागता जा रहा है। सुहास खूब अच्छी तरह समझता है कि खरगोश भीषण प्राण-पण से भाग रहा है। वह गाड़ी की स्पीड से भी ज्यादा तेज़ी से भाग रहा है। वह रोशनी के बीच ही भाग रहा है, उस रोशनी के गोलधारा से वह मानों अपने आपको खिसका नही पा रहा।

लेकिन सुहास जानता है। हो सकता है खरगोश भी जानता है।

एक बार उस चौंधियाती हुई रोशनी के मोह से अगर वह छुटकारा पा गया तो फिर से वह गहन जंगल में लौट कर जा सकता है, वहाँ उसका आश्रय निश्चित है, लेकिन इस समय लगता है कि उस आश्रय की बात उसके मन में नहीं आ रही।

किस के मन में नहीं आ रही ? खरगोश के मन में ? या इन्द्राणी के मन में ?

चौंक कर एक बार अनजाने ही सुहास उछल गया, गिर रहा था क्या ? स्टियरिंग तो उसने बड़ी ज़ोर से पकड़ रखी है, तो फिर खूब सँभाल लिया है, और जरा-सा तेज होता तो खरगोश पहिये के नीचे आ जाता।

खिसक क्यों नही जाता ? खिसक कर ही तो बच सकता है ? खिसकने के बजाय छोटी-सी काया से और भी तेजी से दौड़ रहा है।

—इन्द्राणी ! इतने जोर से मत दौड़ो इन्द्राणी ! हट जाओ, नहीं तो पहिए के नीचे आ जाओगी।—सुहास ने अपने मन में सोचा। फिर से उसकी आँखों के सामने खरगोश की सफेद छोटी-सी काया चमक उठी। सर्वनाश, सुहास के सिर की रगे फट जाएँगी। आने से पहले उन ने थोड़ी ज्यादा ही पी ली थी, सिर्फ आतिथ्य रक्षा के लिए नही, उसने जान-बूझकर नाश करने की इच्छा से ही ज्यादा पी ली थी। अब ऐसा लग रहा था मानो धीरे-धीरे उसी की प्रतिक्रिया हो रही है।

फिर से खरगोश ! सर्वनाश !

"इन्द्राणी !" एक आर्त-नाद करके सुहास चिल्ला उठा, लेकिन उसके गले से जरा-सी भी आवाज नहीं निकली। उसने जीभ से सूखे होठों को एक बार चाट लिया। जनवरी के आखिरी दिन की इस कडाके की सर्दी में भी उसके सिर पर पसीना आ गया। हठात् उसके मन में हुआ कि वह खरगोश को बचा सकता है।

इन्द्राणी को भी ?

लेकिन उस स्पीड में रोशनी बुझाने से सत्यानाश की और कसर ही क्या रह जाएगी ? इस विराट अन्धकार में घने कुहासे से ढके जंगल में रोशनी बुझाने के बाद ? लेकिन रोशनी बुझानी ही पड़ेगी ।

नहीं तो खरगोश बचेगा नहीं, इन्द्राणी भी नहीं ।

लेकिन इन्द्राणी की यह सत्यानाशी रोशनी बुझाएगा कौन ? किसके ऊपर है यह भार ?

वह सुहास नहीं है ।

मालूम होता है सुहास के सिर की रगें कट जाएंगी ।

गाड़ी की गति कम करके सुहास ने स्वीच दबा कर रोशनी बुझा दी । मानों उसके साथ-साथ ही खरगोश भी तीर के वेग से गहन जंगल से अँधेरे में घुस कर एक मिनट में ही खो गया ।

× × ×

जल्दी-जल्दी लौटना होगा, इंद्राणी के पास जाना होगा । जल्दी-जल्दी, और देर नहीं । अभिमान करके सुहास बहुत दूर चला गया है, अब और नहीं । इन्द्राणी उसकी स्त्री है, उसके अच्छे-बुरे का दायित्व सुहास पर है ।

याद आया—विवाह के पश्चात् जीवन में इन्द्राणी उसके आश्रय में हमेशा से ही पूरी-पूरी निर्भय होकर रहती आई है । गृहकर्ती होने पर भी वह सुहास के नजदीक वही लड़कपन वाली छोटी-सी बहू ही है । उसी छोटी बहू को सुहास ने बहुत दूर हटा दिया है । लेकिन अब और नहीं । सुहास ने गाड़ी की स्पीड बढ़ा दी ।

× × ×

बेल बजाते ही कांची ने दरवाजा खोल दिया। वह क्या जानता था कि सुहास वापिस आ जाएगा ? या अन्य किसी कारण से, नहीं तो बेल बजाते ही कैसे खोल देगा ? क्या वह दरवाजे के पास ही खड़ा था ?

सोने के कमरे में बत्ती जल रही थी। सुहास सीधा घुस गया, अब कोई दुविधा नहीं है। उसके अपना मन पक्का कर लिया।

इंद्राणी अधलेटी इजी-चेयर के ऊपर बैठी है। आंखों पर हाथ रखा हुआ है। दरवाजा खुलने की आवाज से सुहास को देखकर चौक उठी।

"यह क्या अभी तक सोई नहीं ?" सुहास ने पास में आकर पूछा।

"न।"

"क्यों ? मेरा तो आने का कोई ठीक नहीं था, नहीं आने पर क्या इसी तरह रात काट लेती ?"—सुहास आकर पास बैठ गया।

"क्या करूँ किसी तरह नींद नहीं आती।"

"क्यों ?" आवेग से सुहास का गला भीग गया।

"वाह ! तुम इतनी देर क्यों कर देते हो ? अकेले-अकेले क्या मुझे डर नहीं लगता ?" अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उठा कर इन्द्राणी ने सुहास की तरफ ताका।

एक मांस-पिंड मानों सुहास के गले में अटक गया हो, उसकी आंखों से पानी गिरने लगा।

"क्यों ? रोते क्यों हो ?" इन्द्राणी उसकी छाती के पास खिसक आई।

"पता नहीं, शायद आनन्द से।" सुहास खूब धीरे-धीरे बोला—"इसका मतलब है तुम अब भी मेरी अनुपस्थिति महसूस करती हो, मैंने सोचा था तुम हमेशा के लिए मेरे पास से खिसक गई हो।"

"ऐसे बात कैसे सोच सके ? मैं तो तुम्हारी हूँ।" इन्द्राणी ने उसकी छाती पर सिर रख दिया।

सुहास ने उसके घने काले बालों को जोर से चूम लिया।

बहुत देर तक दोनों में से कोई भी नहीं बोल पाया। सुहास की छाती पर इन्द्राणी का सिर रखा हुआ, उसकी दोनों आँखें मुँदी हुई, दोनों एक दूसरे का हाथ लिए हुए, प्रत्येक क्षण दोनों एक दूसरे में मिलने लगे।

"एई"

"हूँ"

"एइ"

"क्या ?"

"एक बात पूछूं ?"

"नहीं।" हुक्म के स्वर में इन्द्राणी ने कहा—"कोई प्रश्न नही...

सुहास ने उसका मुंह उठा दिया, फिर उसके होठों को जोर से चूम लिया, फिर खूब धीरे-धीरे बोला।

"तुम क्या अभी भी मुझे प्यार करती हो, बोलो ?"

"अभी के मायने ? क्या कभी तुम्हें प्यार किए बगैर रह सकी हूँ ?"

"फिर सौमित्र……?"

छिः, कैसे यह बात सोच सके ? जीवन में मित्र बहुत होते हैं, लेकिन तुम्हारे साथ उनकी तुलना ? एक-मात्र तुम्हीं को प्यार किया है, और करती हूं।"

"हमेशा प्यार करोगी ?"

"हमेशा किया है, हमेशा करूँगी। लेकिन तुम तो समझते नहीं, समझना चाहते भी नही।"

"जानता हूँ, लेकिन……!"

"लेकिन नहीं, मैं जानती हूँ ! तुम्हें प्यार पर विश्वास नहीं हैं, तुम्हें मुझ पर सदेह है।"

"तुम पर सन्देह ! तो फिर इन्द्राणी क्या लेकर जिन्दा बचूंगा ?"

"मैं भी तो वही सोचती हूँ। कैसे तुम ऐसा सन्देह कर पाए ?

सुहास, मुझ पर तुम विश्वास करो, तुम्हारे अविश्वास से मैं भी नहीं बचूँगी—मै तुम्हें प्यार करती हूँ—तुम्हें ही प्यार करती हूँ।"

इन्द्राणी ने उसे कस के पकड़ के जोर से चूम लिया।

इन्द्राणी को अपनी छाती में घनिष्ट आलिंगन से सुहास ने पीस देना चाहा, फिर सहस्त्रों चुम्बन से उसको पागल करने लगा।

"अरे छोड़ो ! क्या हो रहा है ?"

"नहीं ....." सुहास ने इन्द्राणी का आँचल खीच कर खोल देना चाहा।

"नहीं !" एक तीव्र प्रतिवाद से इन्द्राणी ने समस्त निस्तब्धता भंग कर दी।

"क्यों ?"

"नहीं !"

"मैं अब और नहीं रह सकता इन्द्राणी ! मैं और नहीं रह सकता।"

"नहीं !" इन्द्राणी ने घर से चली जाना चाहा।

"जाओ मत इन्द्राणी ! जाओ मत !"

"नहीं।"

"इन्द्राणी !" हाथ बढ़ा कर सुहास ने उसे पकड़ना चाहा, लेकिन पकड़ नहीं पाया। सुहास जोर से आर्तनाद कर उठा, "इन्द्राणी !" "इन्द्राणी.....!"

सब अन्धेरा.....गाढा अन्धेरा।

× × ×

और जरा सा होता तो गाड़ी खड्ड में जा गिरती। इतनी कड़ाके की सर्दी में भी सुहास पसीने से नहा उठा। इन्द्राणी कहाँ है ? वह तो अभी तक घर नहीं लौट पाया है ? अभी तक वह गाड़ी में ही है ?

फिर ? इन्द्राणी ने तो उसे प्यार की कोई भी बात नहीं कही।

वह तो बहुत दिन पहले की बात है ····।

वह तो अकेला है, अकेला ही गहरे जगल में गाड़ी चला रहा है।

सुहास ने गाड़ी की स्पीड काफी तेज कर दी।

कैसा कांड हो रहा है, इतनी देर से क्या वह जगा-जगा स्वप्न देख रहा था ?

किन्तु अगर यह स्वप्न सत्य हो तो ? आहा ! सुहास की छाती में जोर का दर्द उठने लगा। उसे जल्दी-जल्दी लौटना ही पड़ेगा।

अगर जगा-जगा देखा हुआ स्वप्न सच हो ? अगर पहले की तरह इन्द्राणी उसकी इन्तजार करती हुई बैठी हो ? अगर उनके बीच की यही आग बुझ कर सब कुछ पहले जैसा हो जाए ? आहा, अगर सब कुछ पहले जैसा हो जाए ?

जल्दी-जल्दी लौटना होगा। सुहास ने गाड़ी की स्पीड और भी तेज कर दी।

रात बहुत हो गई।

शायद ग्यारह बज गए है।

रास्ते में बहुत घोर अंधेरा और कुहासा फैला हुआ है। उसके बीच के रास्ते के किनारे एक मकान की रोशनी आ रही है, लगता है बहुत दूर से।

इन्द्राणी तुम्हारा मन कितनी दूर चला गया है ?

इन्द्राणी ! — छाती के अन्दर जैसे उसके तूफान उठा हुआ हो, इन्द्राणी सुहास के जीवन से दूर चली गई है, यह सोचते ही सुहास का दम घुटने लगता है।

शुकिया पार होते ही फिर वही निर्जन रास्ता। एक शयाल इस रास्ते से भागता हुआ उस पार चला गया। बाल-बाल ही बचा। सुहास गाड़ी बहुत तेज चला रहा है। रास्ता बिल्कुल ही सुनसान है। यहाँ कोई आदमी नहीं रहता। रहते है तो केवल जंगली जीव-जन्तु।

अब कुहासा थोड़ा कम हो गया है। हल्की लाइट बुझा कर सुहास

ने हेड लाइट जला दी। हेड लाइट की तेज रोशनी में कुहासे से भीगे हुए काले चक-चक रास्ते ने मानों चुप-चाप अपने को बिछा दिया हो।

चारों ओर निस्यब्धता है।

सिर्फ गाड़ी की एक जैसी आवाज और सुहास का हृदय-स्पन्दन। सुहास को बहुत ही खराब लग रहा है। वह बार-बार कोशिश कर रहा है कि वह अपनी छाती का स्पन्दन न सुन पाए, लेकिन बहुत ही तेजी से सुनाई दे रहा था।

बल्कि गाड़ी की आवाज से भी ज्यादा तेज उसे अपनी छाती की आवाज सुनाई दे रही है। ठीक ऐसे जैसे कारखाने में हथौड़ी पीटी जा रही हो। उसने कान पर एक हाथ रख कर बाधा देने की कोशिश की, लेकिन उससे कुछ सहारा नहीं मिला। उसी तरह आवाज आती रही। जोर-जोर से, और जोर से·····सुहास को बहुत बेचैनी लगने लगी। सिर के अन्दर बहुत ही जोर से दर्द होने लगा। सब मानो एकाकार हो जाएगा। ईर्ष्या और घृणा से उसकी छाती में आग जलने लगी। सिर में भी। अपनी ज्वाला और यन्त्रणा के बारे में जिसे कह पाता वही एक-मात्र इन्द्राणी तो आज सम्भावित आसामी है।

सम्भावित क्यों ?

जरूर ही। लेकिन 'जरूर हां' सोचते ही सुहास का दम घुटने लगता है।

अपने हृदय-स्पन्दन की आवाज को अपने ही कान से सुनने के अत्याचार से वह छुटकारा पाना चाहता है। क्षमा नहीं, अगर वह क्षमा कर पाता तो भी बच जाता, बहुत दिन पहले की तरह अगर वह रो लेता तो भी थोड़ा सा अच्छा हो जाता, लेकिन वह नहीं हुआ। सिर्फ ज्वाला। बस प्रतिहिंसा की ज्वाला। यह सन्देह की अग्नि ने उसके हृदय-स्पन्दन को और भी तेज कर दिया, क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। और अधिक, और अधिक और साथ-साथ सुहास गाड़ी की चाल भी बढ़ाता जा रहा है।

दूसरे पांव को सुहास ने एक्सीलेटर पर दबा दिया। वहीं कुछ देर

पहले के खरगोश के साथ दौड़ लगाने की तरह।

इस दफे खरगोश नहीं है।

इस बार लगता है वह स्वयं अपना प्रतिद्वंदी है। अपने हृदय-स्पन्दन को बन्द करना पड़ेगा, सुहास मानो पागल हो गया। नहीं तो इतने कुहासे के बीच में इतनी तेज स्पीड क्यों करेगा? पहाड़ के उस रास्ते के मोड़ पर इतनी तेज गति से मुड़ते समय गाड़ी लगभग एक तरफ झुक गई थी। लेकिन सुहास को ध्यान नहीं रहा। और तेज स्पीड और तेज·····।

और साथ-साथ ही वही खरगोश फिर से निकल आया। पास के जंगल से खरगोश अचानक निकल आया। फिर से कैसे आ गया अब वह? क्यों आया? अपनी मृत्यु निश्चित जानते हुए भी?

लेकिन अब तो सुहास रोशनी नहीं बुझा सकता। लेकिन रोशनी बुझाने पर?

लेकिन खरगोश कहाँ है? वह तो इन्द्राणी है? सर्वनाश!

रोशनी बुझानी होगी।

खिसक जाओ इन्द्राणी! खिसक जाओ, मैं रोशनी बुझाए दे रहा हूँ।

स्वीच दबा कर रोशनी बुझाने के साथ ही प्रचंड आवाज करती हुई गाड़ी सामने के पेड़ के साथ जा टकराई।

"इन्द्राणी हट जाओ·····मैं·····"

गाड़ी एकदम उलटी हो गई।

सुहास का माथा फट कर खून बहने लगा और उसी कुहासे के बीच बुझी हुई रोशनी में, प्रचंड शब्द करती हुई गाड़ी घने जंगल के अंधेरे में कलाबाजी खाती हुई नीचे जाने लगी।

नीचे, बहुत नीचे।